गोस्वामी तुलसीदास विरचित

दोहावली

सटीक

पण्डित वामदेव शर्मा

इलाहाबाद
रामनरायन लाल
पब्लिशर और बुकसेलर

१९२७

प्रथम संस्करण]
[मूल्य २)

परिचय

भक्तप्रवर कवि सम्राट् गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने अमूल्य ग्रन्थ रत्नों द्वारा हिन्दी साहित्य को गौरवान्वित कर दिया है, धार्मिक सम्बन्ध में गोस्वामी जी के ग्रन्थ रत्नों ने हिन्दू जनता के हृदय का अंधकार बहुत कुछ अंश में दूर किया है। साहित्यिक दृष्टि से हिन्दी साहित्य को किस दर्जे तक पहुँचाया है यह बात किसी से छिपी नहीं है। हिन्दू जाति का कोई भी ऐसा व्यक्ति न होगा; जो गोस्वामी जी के रामचरित मानस से परिचित न हो। हाँ यह बात माननी पड़ेगी कि गोस्वामी जी के अन्य ग्रन्थ रत्नों का जनता में उतना प्रचार नहीं है जितना रामचरित मानस का। पर यह प्रसन्नता की बात है कि जनता का ध्यान गोस्वामी जी के अन्य ग्रन्थों की ओर भी आकर्षित हो रहा है।

गोस्वामी जी ने, जो हमें अमूल्य रत्न प्रदान किये हैं, उन्हीं रत्नों में से एक दोहावली भी है। दोहावली में रामचरित मानस, कवितावली, गीतावली की भाँति किसी कथा का वर्णन नहीं हैं और न कोई एक विषय ही विशेष भाव से लिखा गया है। इस ग्रन्थ में किसी भी एक विषय या एक भाव के दोहे एक स्थान पर नहीं मिलते। इससे यह स्पष्ट है कि इसके लिखने का कोई मुख्य उद्देश्य नहीं था। किन्तु स्वानुभूत अनुभव के उद्‌गार को गोस्वामी जी ने इसमें संग्रहीत कर दिये हैं।

गोस्वामी जी के अन्य ग्रन्थ चरितात्मक हैं, उनमें जो उपदेशात्मक बातें हैं, उन्हें गोस्वामी जी ने अपने ही मन को लक्ष्य करके लिखा है। पर दोहावली में यह बात नहीं है। इसमें गोस्वामी जी ने संसारी जीव को ही उपदेश दिया है। यह उपदेश मुमुक्षु जनों और सांसारिक जीवन व्यतीत करने वाले दोनों को समान रूप से लाभ-दायक हैं। इन उपदेशों के अनुसार सांसारिक जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति का यह संसार स्वर्ग संसार हो जाय, साथ ही साथ भगवद् सान्निध्य प्राप्ति का द्वार भी खुल जाय। मुमुक्षु जनों के लिए तो इनसे बढ़ कर उपदेश और क्या हो सकता है।

भक्तिपथ के पथिक को कौन कौन सी कठिनाइयाँ प्राप्त होती हैं, उनसे बचने के लिए किस मार्ग का अवलम्बन करना चाहिए, किन बातों का ग्रहण और किन बातों का त्याग करना चाहिए, इसका पूर्ण रूप से इसमें दिग्दर्शन कराया गया है। जैसे अभिमान, मान, आलस्य, आशा, दया, गुरु अपमान, नीच संग, संशय, श्रीराम विमुखता, लोभ आदि से क्या हानियाँ होती हैं, इनसे किस प्रकार बचना चाहिए इस पर खासा प्रकाश

डाला गया है। अहिंसा, संत, गुरु, सत्संग, दया, धर्म, दान परमार्थ, विश्वास, वैराग्य, भलाई, भक्ति, सज्जन, सत्य, सन्तोष सेवा, ज्ञान आदि से जो लाभ होता है, इन बातों पर भली भाँति प्रकाश डाला गया है। यही नहीं इनके अतिरिक्त, चित्त, अहं, बुद्धि, मन, जीव, माया, जगत्, विवेक, सिद्धि, भक्ति, ब्रह्म दर्शन आदि गूढ़ तत्वों की विवेचना, उनके रूप, उनकी प्राप्ति के मार्ग को भी प्रकट कर दिया है। साधक जनों के लिए जप और ध्यान की रीति का वर्णन अलौकिक तथा आध्यात्मिक रूप से प्रकट किया गया है।

परमार्थिक वस्तुओं के साथ ही साथ इसमें प्राकृतिक विज्ञान की बातों की भी अच्छी विवेचना की गयी है, स्वराज्य, राजा और राजनीति विषयक सिद्धान्तों का जो मार्मिक वर्णन गोस्वामी जी ने इन छोटे छोटे दोहों में की है वह अन्यत्र नहीं पाया जाता। राजा और प्रजा का क्या सम्बन्ध है, राजा को प्रजा का पालन किस रूप से करना चाहिए। राजा को प्रजा से किस रूप में कितना कर लेना चाहिए आदि बातों की अच्छी विवेचना की गयी है।

भक्त और भक्ति के विषय में तो गोस्वामी जी की लेखनी बेजोड़ है। चातक की भक्ति, श्रद्धा और प्रेम का अनुपमेय और अपूर्व वर्णन है। सेवक सेव्य भाव को गोस्वामी जी ने अपूर्व रूप से दर्शा दिया है। सेवक और सेव्य के बीच कौन से भाव होने चाहिए और कौन से नहीं इस बात पर भली भाँति प्रकाश डाल दिया है।

अन्त में सहृदय पाठकों से मेरा साग्रह निवेदन है कि इसमें जो कुछ त्रुटियाँ रह गयी हों, उनकी सूचना देने की कृपा करेंगे जिससे द्वितीय संस्करण में वे त्रुटियाँ दूर कर दी जा सकें।

चैत शुक्ला ९
सम्वत् १९८४

वामदेव

श्रीसीतारामचन्द्राभ्यांनमः

दोहावली

दोहा

राम वामदिसि जानकी लषन दाहिनी ओर ।
ध्यान सकल कल्यानमय सुरतरु तुलसी तोर ॥ १ ॥

जिस समय चित्रकूट में भगवान् श्रीरामचन्द्र जी विराजमान थे, उनकी उस समय की स्थिति का निर्देश करके तुलसीदास जी ध्यान करते हैं। जिनकी बायीं ओर श्रीजानकी और दाहिनी ओर श्रीलक्ष्मण जी हैं उन श्रीरामचन्द्र जी का ध्यान सारे मङ्गलों का करने वाला है। (तुलसीदास जी कहते हैं)—हे तुलसी! यह ध्यान तुम्हारे लिए कल्पवृक्ष के समान है। भाव यह कि जैसे कल्पवृक्ष मन वाञ्छित फल को देने वाला है, वैसे ही श्रीरामचन्द्र जी का ध्यान अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष का देने वाला है ॥ १ ॥

सीता लषनु समेत प्रभु, सोहत तुलसीदास ।
हरषत सुर बरसत सुमन सगुन सुमंगलबास ॥ २ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं—प्रभु श्रीरामचन्द्र जी सीता और लक्ष्मण सहित चित्रकूट में शोभायमान हैं, भगवान् को सगुण रूप में देख कर देवता प्रसन्न होते हैं और पुष्पों की वृष्टि करते हैं, ऐसे समय में सब जगह आनन्द मङ्गल है ॥ २ ॥

पंचबटी बटबिटप-तरु सीता-लषन-समेत ।
सोहत तुलसीदास प्रभु सकल सुमंगल देत ॥ ३ ॥

पञ्चवटी में वट वृक्ष के नीचे सीता लक्ष्मण सहित तुलसीदास के प्रभु श्रीरामचन्द्र जी शोभायमान हैं और सब आनन्द मङ्गलों को देते हैं (कवि कहते हैं कि रे मन! तू भी वहीं चल, वहीं सब आनन्द मङ्गल मिलेगा) ॥ ३ ॥

चित्रकूट सब दिन बसत, प्रभु सीय-लषन-समेत ।
रामनाम जप जापकहि तुलसी अभिमत देत ॥ ४ ॥

प्रभु श्रीरामचन्द्र जी सीता और लक्ष्मण के साथ चित्रकूट में सब दिन वास करते हैं। (यह बात कवि ने अपने अनुभव की कही है, क्योंकि कलियुग में भी कवि को श्रीरामचन्द्र

जी का दर्शन चित्रकूट ही में हुआ था।) तुलसीदास जी कहते हैं—श्रीरामनाम के जप करने वालों को श्रीरामचन्द्र जी इच्छित फल देते हैं ॥ ४ ॥

पय अहार फल खाइ जपु रामनाम षट मास ।
सकल सुमंगल सिद्धि सब, करतल तुलसीदास ॥ ५ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं—जल और फल का भोजन करके छः महीने रामनाम जपो तो तुम्हारे हाथ में सारे मङ्गल और सब सिद्धियाँ आ जायँ। भाव यह कि आनन्द मङ्गल और सिद्धियाँ यदि सरलता से पाना चाहते हो तो चित्रकूट में वास करके फलादि का भोजन करो और रामनाम जपो। छः महीने में ही सब सिद्धियाँ प्राप्त हो जायँगी। न अधिक समय लगेगा न अधिक कष्ट उठाना पड़ेगा ॥ ५ ॥

रामनाम-मनि-दीप धरु जीह-देहरी द्वार ।
तुलसी भीतर बाहिरौ, जौ चाहसि उजियार ॥ ६ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि यदि भीतर (अन्तरात्मा में) और बाहर (संसार में) उजाला चाहते हो तो श्रीरामनाम रूपी मणि का दीपक जीभ रूपी द्वार की देहरी पर रखो। भाव यह कि यदि लोक और परलोक दोनों में सुख चाहते हो तो श्रीरामनाम का भजन करो ॥ ६ ॥

हिय निर्गुन नयनन्हि सगुन रसना राम सुनाम ।
मनहुँ पुरट-संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम ॥ ७ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि हृदय में भगवान् का निर्गुण रूप और नेत्रों में सगुण रूप और जीभ में श्रीरामचन्द्र जी का सुन्दर नाम ये तीनों ऐसे हैं मानों सोने के संपुट में रत्न सुशोभित हो। भाव यह कि हृदय में भगवान् के निराकार रूप का ध्यान करे, नेत्रों से भगवत् लीला का दर्शन करे और जीभ से रामनाम जपे तो सब कल्याण हो ॥ ७ ॥

सगुन ध्यान रुचि सरस नहिं, निर्गुन मन ते दूरि ।
तुलसी सुमिरहु राम को नाम सजीवन-मूरि ॥ ८ ॥

यदि सगुण रूपधारी भगवान् का ध्यान मन के लिये सरस नहीं है, निर्गुण और निराकार मन से परे है तो तुलसीदास जी कहते हैं कि (ऐसी स्थिति में) श्रीराम के नाम को स्मरण करो। यह संजीवनी औषधि है। भाव यह कि भयङ्कर कलिकाल में जीव

संसारी विषय वासनाओं में फँसा हुआ है, अतः वह न तो सगुण परमात्मा का ध्यान कर सकता है न निर्गुण का इसलिये आवागमन बना ही रहता है। इससे छुटकारा पाने के लिए कोई औषधि है तो वह केवल श्रीरामनाम ही है। रामनाम का शुद्ध हृदय से जप करना ही आवागमन से मुक्त करने के लिए सब से सरल साधन है ॥ ८ ॥

एक छत्र, इक मुकुटमनि, सब बरनन पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ ॥ ९ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र जी के नाम के दो अक्षर शोभायमान हैं। ये दोनों अक्षर 'र' और 'म' सब वर्णों से श्रेष्ठ हैं, क्योंकि एक अक्षर 'र' सब अक्षरों पर छत्र 'ँ' रूप में और दूसरा 'म' मुकुट मणि 'ं' की तरह सब अक्षरों के ऊपर रहता है। इन्हीं दोनों से सब अक्षरों की शोभा है, अतः राम के बिना कोई शब्द मुँह से न निकालना चाहिए ॥ ९ ॥

राम नाम को अंक है सब साधन है सून।
अंक गये कछु हाथ नहिं अंक रहे दस गून ॥ १० ॥

श्रीरामचन्द्र जी का नाम अङ्क (एक, दो तीन, चार आदि संख्या) है। अन्य सब साधन (यज्ञादि, तीर्थ यटन, कर्मकाण्ड, संयम, नियम आदि) शून्य हैं। अङ्क के न रहने से कुछ हाथ नहीं आता और अङ्क रहने से दस गुना होता है। अर्थात् अङ्क के बिना शून्य का कुछ मूल्य नहीं रह जाता और अङ्क के साथ शून्य रहने से अंक का मूल्य दस गुना बढ़ जाता है। भाव यह कि श्रीरामभजन के बिना अन्य सब साधन निरर्थक हैं, श्रीरामभजन से ही सब साधन सार्थक होते हैं ॥ १० ॥

राम नाम को कलपतरु कलि कल्यान-निवास।
जो सुमिरत भयो भाग तें तुलसी तुलसीदास ॥ ११ ॥

कलियुग में मङ्गलधाम श्रीरामचन्द्र जी का नाम कल्पतरु, मनचाहा फल देने वाला है। जिसका स्मरण करने से भाग्य वश 'मैं' तुलसी से तुलसीदास हो गया। भाव यह कि कलियुग महापाप का मूल है, ऐसे समय में भी मैं तुच्छ जन श्रीराम का नाम लेने से आदर का पात्र हुआ ॥ ११ ॥

राम नाम जपि जीह जन भये सुकृत सुखसालि।
तुलसी यहाँ जो आलसी गयो आजु की कालि ॥ १२ ॥

श्रीरामचन्द्र जी का नाम जप कर लोग पुण्यात्मा और ऐश्वर्य सम्पन्न हो गये। तुलसीदास जी कहते हैं कि इस लोक में जो भी रामनाम कहने में भी आलसी हैं, वे चाहे आज गये या कल अर्थात् उनका जीना व्यर्थ है। भाव यह कि श्रीरामनाम लोक और परलोक दोनों का देने वाला है इसको न भजने वाला जीता ही मरे तुल्य है॥ १२ ॥

नाम गरीबनिवाज को राज देत जन जानि।
तुलसी मन परिहरत नहिं घुरबिनिया की बानि॥ १३ ॥

दीनों के रक्षक श्रीरामचन्द्र जी का नाम (स्मरण करने वालों को) अपना भक्त समझ राज देता है। तुलसीदास जी कहते हैं कि (यह समझ कर भी) मन कूड़े खाने में पड़े दाने चुगने को स्वभाव को नहीं छोड़ता। भाव यह कि राम का नाम सब सुखों को देने वाला है, पर तो भी लोग अल्प फलदायक अन्य देवी, देवता, भूत, प्रेतादि की उपासनादि में ही भूले भटके फिरते हैं॥ १३ ॥

कासी विधि बसि तनु तजे हठि तन तजे प्रयाग।
तुलसी जो फल सो सुलभ रामनाम-अनुराग॥ १४ ॥

काशी में विधि पूर्वक रह कर प्राण तजने में और प्रयाग में हठ कर प्राण छोड़ने से जो फल होता है। वह राम नाम में प्रेम करने ही से होता है। भाव यह कि जो फल काशी प्रयाग क्षेत्र में कष्टसाध्य है वह राम नाम से सुलभ में ही प्राप्त है॥ १४ ॥

मीठो अरु कठवति भरो रौताइ अरु खेम।
स्वारथ परमारथ सुलभ राम नाम के प्रेम॥ १५ ॥

मीठा और कठवत भरा (अत्यधिक) शासन और कल्याण, स्वारथ और परमार्थ रामनाम में प्रेम करने से ये सभी सुलभ हैं। अथवा मीठा और अत्यधिक हुकूमत और कल्याण, स्वार्थ और परमार्थ दोनों होना कष्ट साध्य हैं वे भी रामनाम से सुलभ हैं। भाव यह कि रामनाम में प्रेम करने से इस लोक में ऐश्वर्यादि सुख की प्राप्ति और परलोक में सद्गति मिलती है॥ १५ ॥

राम नाम सुमिरत सुजस भाजन भये कुजाति।
कुतरुक सुरपुर राजमग लहत भुवन विख्याति॥ १६ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के नाम का भजन करने से नीच जाति वाले (व्याध, यवन, किरात, खस, स्वपच, गीध आदि) सुन्दर यश के पात्र हुए। स्वर्ग तथा राजपथ के बुरे

वृक्ष भी संसार में प्रसिद्धि पाते हैं। अथवा श्रीरामनाम स्मरण करने से नीच जाति वाले भी सुयश के पात्र होते हैं, उनका कहीं रोक नहीं, स्वर्ग के राजमार्ग में भी वे प्रसिद्ध परम पद को प्राप्त करते हैं॥ १६॥

स्वारथ सुख सपनेहुँ अगम परमारथ न प्रवेस।
राम नाम सुमिरत मिटहि तुलसी कठिन कलेस॥ १७॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जिसको स्वार्थ सुख (सांसारिक ऐश्वर्यादि सुख) सपने में भी अगम है, नहीं मिलता है और न परमार्थ में प्रवेश, परमपद में ही पहुँच है, उसका कठिन दुःख (आधिदैविक, आधिभौतिक, आधिदैविक) आदि श्रीरामनाम स्मरण करने ही से मिट जाता है। अर्थात् जिसकी कहीं गति नहीं उसके लिए एकमात्र अवलम्ब रामनाम है॥ १७॥

मोर मोर सब कहँ कहसि तू को कहु निज नाम।
कै चुप साधहि सुनि समुझि कै तुलसी जपु राम॥ १८॥

तुलसीदास जी कहते हैं—अपना अपना तो तू सब को कहता है, पर तू कौन है? अपना तो नाम बता। अर्थात् तू अपने को जाने बिना ही सब पर अधिकार जमाना चाहता है। अतः तू कौन है इस भेद को किसी से सुन और समझ कर चुप साध ले। अर्थात् गुरु द्वारा ज्ञान पाकर, अन्तरात्मा में लीन हो जा या श्रीरामचन्द्र जी का नाम चुपचाप बैठ कर जपा कर॥ १८॥

हम लखि लखहि हमार, लखि हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहि का लखहि राम नाम जपु नीच॥ १९॥

तुलसीदास जी ने इस दोहे को किसी अलख अलख पुकारते हुए साधु से कहा था। तू हम लखि (सोऽहमस्मि का जो भाव है उसे देख) और लखिहि हमार (हमारे प्रभु श्रीरामचन्द्र जी को देख) हम हमार के बीच लखि (इन दोनों के अन्तर जो भेद है, उसे देख) अर्थात् यदि तुझे अलख की अगमता और श्रीरामनाम की सुगमता का ज्ञान हो जायगा तो कोई सन्देह बाकी नहीं रह जायगा। तू अलख के पीछे इधर उधर ठोकर खाता न फिरेगा। हे नीच! तू अनन्त प्रभु की अपार माया को क्या देखता इस का वेद भी पार नहीं पाते। अतः तू राम नाम को जप। अथवा ईश्वर का अंश होने पर भी जीव माया जाल में फँसने से अल्पज्ञ है। अतः वह जगन्नियन्ता को अलख अलख

करके पुकारता है, पर पञ्चभौतिक शरीर पर अपना अधिकार समझ मैं और मेरा का अभिमान करता है। पर मैं और मेरा का जो सम्बन्ध जोड़ने वाला है, वह भी अलख है, उसे क्या देखता है। अरे नीच! श्रीरामनाम को जप। अथवा उन वस्तुओं को देख जिन्हें जीव हम कहता है, (जैसे शरीरादि) और उन वस्तुओं को देख जिन्हें अपना मानता है (जैसे पुत्र कलत्र, धन वैभव आदि) और हम हमारे इन दोनों के बीच में जो संसार है उसे देख। भाव यह कि ये सब नश्वर हैं, ये सब माया जाल हैं जो अलख है उसे क्या देखता है, यह मार्ग बड़ा ही कठिन है, इस मार्ग में पड़ने से जीव मुक्त नहीं होता। अतः अरे नीच! तू एक सीधा मुक्ति का मार्ग श्रीरामनाम जप ॥ १९ ॥

राम नाम अवलम्ब बिनु परमारथ की आस।
बरसत बारिद-बूँद गहि चाहत चढ़न अकास ॥ २० ॥

श्रीरामचन्द्र जी के नाम के बिना सहारे यदि कोई मोक्ष की आशा करे तो उसकी वह आशा वैसी है जैसे कोई बरसते हुए बूँद को पकड़ कर आकाश में चढ़ना चाहे। भाव यह कि श्रीरामनाम के बिना अन्य साधनों द्वारा मुक्ति पाना असम्भव है ॥ २० ॥

तुलसी हठि हठि कहत नित चित सुनि हित करि मानि।
लाभ राम सुमिरत बड़ो बड़ी बिसारे हानि ॥ २१ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि मैं हठ करके नित्य ही कहता हूँ, ध्यान दे कर सुनो, मेरे कहने को हितकारी मानो (वह कथन यह है) श्रीरामनाम के स्मरण से बड़ा भारी लाभ है और श्रीराम का नाम बिसारने से बड़ी हानि है। लाभ यह है कि श्रीरामनाम स्मरण करने से क्षण भर में जन्म जन्मान्तरों के पाप नष्ट हो जाते हैं, भगवद् सान्निध्य प्राप्त हो जाता है और न भजने से अनेक योनियों में जीव सदा भ्रमता ही रहता है, आवागमन से मुक्त नहीं होता ॥ २१ ॥

बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु।
होहि राम को, नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु ॥ २२ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि अनेकों जन्म की बिगड़ी हुई आज अभी सुधर जाय और तू श्रीरामचन्द्र जी का हो जाय यदि तू बुरी संगत छोड़ कर श्रीरामनाम को जप। भाव यह कि सत्संगति में रह कर यदि मनसा वाचा कर्मणा श्रीरामनाम का स्मरण करे तो अनेक जन्मों के पाप दूर हो जाय और सद्गति प्राप्त हो ॥ २२ ॥

प्रीति प्रतीति सुरीति सों रामनाम जपु राम।
तुलसी तेरो है भलो आदि मध्य अवसान ॥ २३ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं–प्रेम से, श्रद्धा से और सुन्दर रीति से (गुरु की बतायी हुई रीति पर विश्वास करके) श्रीरामचन्द्र जी का नाम 'राम' जपो। इससे तुम्हारा आदि, मध्य और अन्त भला होगा अर्थात् बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था बन जायँगी ॥ २३ ॥

दंपति-रस रसना, दसन परिजन, बदन सुगेह।
तुलसी हरहित बरन सिसु संपति सहज सनेह ॥ २४ ॥

तुलसीदास जी इस दोहे में श्रीरामनाम की समता पुत्र से देते हैं। जीभ स्त्री पुरुष हैं, दाँत परिवार के लोग हैं, मुख सुन्दर घर है, शिवजी की भलाई करने वाले अक्षर (राम) बालक हैं और स्वाभाविक स्नेह धन है, भाव यह कि जिस तरह से माता पिता सपरिजनों में अपने पुत्र का प्यार करते हैं और वह पुत्र उन्हें सुख का देने वाला होता है, वैसे ही अपनी जीभ से श्रीरामनाम पर प्रेम कर (जप) इससे तेरा भला होगा ॥ २४ ॥

बरषा ऋतु रघुपति-भगति तुलसी सालि सुबास।
रामनाम बर बरन जुग सावन भादौं मास ॥ २५ ॥

श्रीरामचन्द्र जी की भक्ति वर्षा ऋतु है, तुलसीदास जी साठी धान हैं, श्रीरामचन्द्र जी के नाम के दोनों अक्षर (र और म) सावन और भादों के महीने हैं, भाव यह कि जैसे सावन और भादों की वर्षा से साठी धान लहलहा उठता है, वैसे ही श्रीरामचन्द्र जी की भक्ति से भक्तजन सुखी होते हैं ॥ २५ ॥

रामनाम नर-केसरी कनककसिपु कलिकालु।
जापकजन प्रह्लाद जिमि पालहिं दलि सुरसालु ॥ २६ ॥

श्रीरामनाम रूपी नृसिंह, देवताओं को दुःखदायक कलिकाल रूपी हिरण्यकशिपु को दल (नष्ट) कर भक्तजन रूपी प्रह्लाद की रक्षा करता है। अर्थात् जैसे नृसिंह भगवान ने हिरण्यकशिपु को मार कर प्रह्लाद की रक्षा की वैसे ही कलि के काम, क्रोध मोहादिकों को नष्ट कर श्रीराम का नाम भक्तों की रक्षा करता है ॥ २६ ॥

राम नाम कलि कामतरु सकल सुमंगल कंद।
सुमिरत करतल सिद्धि सब पग पग परमानंद ॥ २७ ॥

कलियुग में (काम, क्रोधादि की प्रधानता से सब साधन व्यर्थ हो जाते हैं पर) राम नाम इच्छित फल देने वाला, कल्पवृक्ष के समान है और सब आनन्द मंगलों की जड़ है। राम नाम स्मरण करने से सब सिद्धियाँ हाथ आ जाती हैं और प्रत्येक पग पर परम आनन्द प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

रामनाम कलि कामतरु रामभगति सुरधेनु।
सकल सुमंगल मूल जग गुरुपद-पंकज-रेनु ॥ २८ ॥

कलियुग में श्रीरामचन्द्र जी का नाम कल्पवृक्ष है और श्रीरामचन्द्र जी की भक्ति कामधेनु है। कल्पवृक्ष और कामधेनु की प्राप्ति स्वर्ग ही में होती है और ये दोनों मन वाञ्छित सब फलों को देने वाले हैं, पर रामनाम से, पाप के मूल कलियुग में भी सब सुखों की प्राप्ति होती है। गुरु के चरणकमलों की धूल संसार में सब मंगलों की जड़ है। अर्थात् बिना गुरु की भक्ति के ज्ञान नहीं उत्पन्न हो सकता, बिना ज्ञान के रामभक्ति में प्रेम नहीं उत्पन्न होता और बिना भक्ति न तो इहलोक ही में सुख प्राप्त हो सकता है न परलोक ही में ॥ २८ ॥

जथा भूमि सब बीज में नखत-निवास अकास।
रामनाम सब धरम में जानत तुलसीदास ॥ २९ ॥

जैसे सब बीज पृथ्वी में हैं और सब नक्षत्र आकाश में हैं वैसे ही रामनाम सब धर्मों में है, यह बात तुलसीदास जानते हैं। भाव यह कि तुलसीदास जी ने सब साधनों को किया पर किसी में उन्हें शान्ति न मिली, रामनाम के जपने ही पर उन्हें शान्ति मिली, इससे सब धर्मों में रामनाम की स्थिति मानी है। बिना रामनाम के कोई भी साधन सफलीभूत नहीं होता ॥ २९ ॥

सकल कामनाहीन जे राम भगति-रसलीन।
नाम प्रेम-पियूष-ह्रद तिनहुँ किये मन मीन ॥ ३० ॥

जो (ऋषि मुनि) सब कामनाओं से रहित थे और श्रीरामचन्द्र जी की भक्ति में लीन थे, वे भी श्रीरामनाम रूपी तालाब में अपने मन को मछली किये रहे। अर्थात् वे भी श्रीरामनाम जपते रहे ॥ ३० ॥

ब्रह्म राम ते नाम बड़ बरदायक बरदानि।
रामचरित सतकोटि महँ लिय महेस जिय जानि ॥ ३१ ॥

ब्रह्म रूप श्रीराम से श्रीराम का नाम बड़ा है, क्योंकि वर देने वाले को भी वर देने वाले शिवजी ने सौ करोड़ों रामायणों में राम का नाम (राम) ही को लिया। अर्थात् वे भी रामनाम ही को जपा करते हैं ॥ ३१ ॥

सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्ह रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल बेद-बिदित गुनगाथ ॥ ३२ ॥

भले सेवक शबरी और जटायु गीध को श्रीरामचन्द्र जी ने सुन्दर गति (मोक्ष) दी, पर श्रीराम के नाम ने असंख्य दुष्टों को तारा जिसकी कथा वेदों में वर्णित है। भाव यह कि श्रीरामचन्द्र जी ने तो उन्हीं को तारा जिन्होंने उनकी सेवा की है पर उनके नाम ने बड़े बड़े पापियों को भी भवसागर से पार किया। अतः श्रीराम से बड़ा उनका नाम राम ही है ॥ ३२ ॥

रामनाम पर राम तें प्रीति प्रतीति भरोस।
सो तुलसी सुमिरत सकल सगुन-सुमंगल-कोस ॥ ३३ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र जी से उनके नाम ' राम ' पर विशेष प्रेम, विश्वास और भरोसा करना चाहिये क्योंकि सगुन और मंगलों का भण्डार उसी नाम को स्मरण करने से प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥

लंक बिभीषन, राज कपि, पति मारुति, खग मीच।
लही राम सों नामरति चाहत तुलसी नीच ॥ ३४ ॥

जिन श्रीराम से विभीषण ने लङ्का पाया, कपि सुग्रीव ने राज्य पाया और पवनतनय हनुमान जी ने स्वामी पाया अर्थात् हनुमान का स्वामी होना श्रीरामचन्द्र जी ने स्वीकार किया और पक्षी राज जटायु ने मुक्ति पायी। उन्हींके नाम में नीच तुलसीदास प्रेम चाहता है। भाव यह कि तुलसीदास जी अपने को नीच समझते हैं, अतः श्रीरामचन्द्र जी का सान्निध्य इन्हें कैसे प्राप्त हो सकता है, अतः वे दूर ही से रामनाम भजने में ही प्रसन्न हैं ॥ ३४ ॥

हरत अमंगल अघ अखिल करन सकल कल्यान।
रामनाम नित कहत हर गावत बेद पुरान ॥ ३५ ॥

सम्पूर्ण बुराइयों और पापों को हरने वाला और सब कल्याणों को करने वाला रामनाम को शिव जी सदा जपते हैं, ऐसा वेद और पुराणों में बखान है अथवा सब बुराइयों और पापों को हरने वाला और सब मंगलों को करने वाला श्रीरामनाम को शिव जी जपा करते हैं और वेद पुराण भी उसके माहात्म्य का बखान करते हैं ॥३५॥

तुलसी प्रीति प्रतीति सों रामनाम-जप-जाग ।
किये होय विधि दाहिनो देइ अभागेहि भाग ॥ ३६ ॥

प्रेम और विश्वास से श्रीराम नाम जप रूपी यज्ञ करने से ब्रह्मा सदा अनुकूल होकर अभागे को भी भाग्यवान बना देता है ॥ ३६ ॥

जल थल नभ गति अमित अति, अग जग जीव अनेक ।
तुलसी तोसे दीन कहँ रामनाम गति एक ॥ ३७ ॥

जल, थल और आकाश में निर्वाह करने वाले अनेक जीव हैं, और जड़ चेतन जीव भी अनेक हैं, पर इनमें से किसी का भी तुलसीदास को सहारा नहीं है, तुलसी ऐसे दीन का तो एक मात्र सहारा रामनाम से ही है इसीके भरोसे तुलसी की सब बन जायगी ॥ ३७ ॥

राम भरोसे राम बल रामनाम विस्वास ।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल माँगत तुलसीदास ॥ ३८ ॥

तुलसीदास जी अपनी मनोकामना प्रकट करते हैं, वे माँगते हैं कि राम का मुझे सहारा हो, राम का बल हो, रामनाम में विश्वास हो और आनन्द मंगल के साथ (मैं श्रीराम नाम का) स्मरण करूँ। अथवा, तुलसीदास जी श्रीराम के नाम के अवलम्बन का स्मरण करके कल्याण, राम के बल का स्मरण कर भलाई और राम के नाम का स्मरण कर कुशल चाहते हैं। अथवा तुलसीदास जी श्रीराम नाम का सहारा, श्रीराम का बल, श्रीराम नाम में विश्वास और श्रीराम नाम का सुमिरन से ही शुभ कुशल मंगल का होना मानते हैं ॥ ३८ ॥

रामनाम रति राम गति, रामनाम विस्वास ।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल दुहुँ दिसि तुलसीदास ॥ ३९ ॥

श्रीरामनाम में प्रेम, श्रीराम का सहारा, श्रीरामनाम में विश्वास और श्रीरामनाम स्मरण से इहलोक और परलोक में शुभ मंगल कुशल होता है अर्थात् लोक और परलोक दोनों का बनाने वाला श्रीरामनाम ही है ॥ ३९ ॥

रसना साँपिनि बदन बिल, जे न जपहिं हरिनाम ।
तुलसी प्रेम न राम सों ताहि बिधाता बाम ॥ ४० ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जो श्रीराम नाम को नहीं जपता उसकी जीभ साँपिन है और मुख बिल है। जिसको रामनाम से प्रेम नहीं उसके विपरीत ब्रह्मा हैं। अर्थात् वह अभागा है जो रामनाम से प्रेम नहीं करता ॥ ४० ॥

हिय फाटहु, फूटहु नयन, जरउ सो तन केहि काम ।
द्रवहिं, स्रवहिं, पुलकहिं नहीं तुलसी सुमिरत राम ॥ ४१ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीराम का स्मरण करते ही जो हृदय द्रवता (पिघलता) नहीं वह हृदय फट जाय, जिस नेत्र में आँसू नहीं आते वे फूट जायँ और जो शरीर पुलकित नहीं होता वह किस काम का वह भी जल जाय। भाव यह कि श्रीराम नाम के स्मरण से शरीर पुलकित न हुआ, प्रेम विह्वल होने से हृदय द्रवीभूत न हुआ और नेत्रों में अश्रु नहीं आया वह शरीर किस काम का है, उसका जल जाना ही भला है ऐसे जीवन से मरना ही अच्छा है ॥ ४१ ॥

रामहिं सुमिरत, रन भिरत, देत, परत गुरु पाय ।
तुलसी जिन्हहिं न पुलक तनु ते जग जीवत जाय ॥ ४२ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीराम जी का स्मरण करते समय, युद्ध में भिड़ते समय, दान देते समय और गुरु के चरणों में पड़ते समय जिसका शरीर पुलकित न हुआ, वह संसार में जीता हुआ भी मुर्दा है ॥ ४२ ॥

सोरठा

हृदय सो कुलिस समान जो न द्रवहि हरिगुन सुनत ।
कर न रामगुन-गान जीह सो दादुरजीह सम ॥ ४३ ॥

जो हृदय श्रीभगवान की गुणगाथा सुन कर द्रवता नहीं, दया से पूर्ण नहीं होता वह हृदय वज्र के तुल्य है और वह जीभ मेढ़क की जीभ के समान है जो राम का गुणगान नहीं करता अर्थात् जैसे मेढक टर्र टर्र कर्णकटुशब्द किया करता है वैसे ही रामनाम न कहने वाले का बोलना व्यर्थ है ॥ ४३ ॥

स्रवै न सलिल सनेह तुलसी सुनि रघुबीर जस।
ते नयना जनि देहु, राम करहु बरु आँधरो॥ ४४॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र जी का यश सुन कर (प्रेम विह्वल होने के कारण) जिस नेत्र से स्नेह जल नहीं गिरता वैसा नेत्र हे राम! मत दो बल्कि अंधे ही बनाओ अर्थात् श्रीरामचन्द्र जी के प्रेम में विह्वल होकर जिसके नेत्र से प्रेमाश्रु न गिरे, उस नेत्र से नेत्रवान होने की अपेक्षा अँधा होना अच्छा है॥ ४४॥

रहै न जल भरि पूरि, राम सुजस सुनि रावरो।
तिन आँखिन में धूरि भरि भरि मूठि मेलिये॥ ४५॥

हे राम! आपका सुयश सुन कर जिस नेत्र में प्रेम जल नहीं भर आता उस नेत्र में मूठि में धूल भर भर कर डाल देना चाहिये। भाव यह कि धूल भरने से आँखें फूट जायँगी, फिर संसारी ऐश्वर्यादि विषयवासना दृष्टिगोचर न होंगे और न उधर चित्त ही चलायमान होगा, इससे एकाग्रचित्त होने पर रामनाम में ध्यान लगने पर वास्तविक सुख, परमानन्द प्राप्त होगा॥ ४५॥

बारक सुमिरत तोहिं होहिं तिनहिं सन्मुख सुखद।
क्यों न सँभारहिं मोहि दयासिंधु दसरत्थ के॥ ४६॥

एक बार स्मरण करने पर भी, तू स्मरण करने वाले के सामने होता है, और उनके कष्ट दूर कर सुख देता है (जैसे गज को ग्राह से उबार, द्रौपदी का चीर बढ़ा, अजामिल को यमदण्ड से छुड़ा कर उनकी रक्षा की।) फिर हे दयासिंधु दशरथ के पुत्र! तू मुझे क्यों नहीं संभालता॥ ४६॥

साहिब होत सरोष सेवक को अपराध सुनि।
. अपने देखे दोष सपनेहु राम न उर धरेउ॥ ४७॥

दूसरे सब स्वामी सेवक का दोष सुन कर ही क्रुद्ध हो जाते हैं, पर श्रीरामचन्द्र जी ऐसे प्रभु हैं कि सेवक का दोष स्वयं देख कर भी सपने में भी उसको मन में नहीं लाते (जैसे वालि ने सुग्रीव की स्त्री को रख लिया, इस अपराध से वालि को मार डाला, पर सुग्रीव ने वही अपराध किया, बड़े भाई वालि की स्त्री को रख लिया, पर भक्त होने से भगवान् ने उसके अपराध पर ध्यान नहीं दिया)॥ ४७॥

दोहा

तुलसी रामहिं आपु तें सेवक की रुचि मीठि ।
सीतापति से साहिबहि कैसे दीजै पीठि ॥ ४८ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र जी को अपने से अपने सेवकों की रुचि प्यारी है, सीतापति श्रीरामचन्द्र जी ऐसे प्रभु से पीठ कैसे दी जायगी । अर्थात् ऐसे प्रभु की सेवा से कैसे कोई विमुख होगा जो अपनी प्रतिज्ञा को तोड़* कर भी भक्तों की रुचि रखते हैं ॥ ४८ ॥

तुलसी जाके होयगी अंतर बाहिर दीठि ।
सो कि कृपालुहि देइगो केवटपालहि पीठि ॥ ४९ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जिसकी अन्तर दृष्टि अर्थात् सगुण रूप से व्याप्त भगवान् में भक्ति होगी और बाहरी दृष्टि अर्थात् भगवान् के लीलादि गुणों को देख कर जो उसमें प्रेम करेगा, वह क्या केवट का उद्धार करने वाले दयालु श्रीरामचन्द्र जी की सेवा से चूकेगा । भाव यह कि जब केवट जैसे अधम को परम दयालु श्रीरामचन्द्र जी ने वह गति दी जो योगियों को भी अप्राप्य है तो ऐसे प्रभु की सेवा से ज्ञान भक्ति युक्त पुरुष कैसे चुकेगा ॥ ४९ ॥

प्रभु तरुतर, कपि डार पर, ते किये आपु समान ।
तुलसी कहूँ न राम सों साहिब सीलनिधान ॥ ५० ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि प्रभु श्रीरामचन्द्र जी वृक्ष के नीचे बैठे हैं और बन्दर डाल के ऊपर अर्थात् जिन्हें यह भी ज्ञान नहीं कि बड़ों के सामने कैसे बैठा जाता है, उन्हें प्रभु ने अपने समान किया, अपना लिया । श्रीरामचन्द्र जी के समान शील के भण्डार स्वामी और कहाँ कोई है ? कहीं नहीं ॥ ५० ॥

रे मन सब सों निरस ह्वै सरस राम सों होहि ।
भलो सिखावन देत है निसि दिन तुलसी तोहि ॥ ५१ ॥

हे मन ! सब से फीका हो, श्रीरामचन्द्र जी से सरस हो । अर्थात् माता पिता, पुत्र कलत्र आदि संसारी संबन्धों तथा ऐश्वर्यादि विषय वासनादि संसारी सुखों को त्याग

* भरत जी कहते हैं —

"निज पन तजि राखेउ पन मोरा । छोह सनेह कीन्ह नहीं थोरा ॥"

एकाग्रचित्त हो श्रीरामचन्द्र जी से प्रेम कर। यह सब से उत्तम सीख तुझे तुलसीदास प्रति दिन देते हैं ॥ ५१ ॥

हरो चरहिं, तापहिं बरत, फरे पसारहिं हाथ।
तुलसी स्वारथमीत सब, परमारथ रघुनाथ ॥ ५२ ॥

वृक्ष के हरे रहने पर पशु पक्षी मनुष्य आदि चर लते हैं, सूखने पर जला कर तापते हैं और फलने पर हाथ फैलाते हैं. भाव यह कि, जो सब प्रकार से भरा पूरा है, उसे लोग नष्ट करने की कोशिश करते हैं, और जिसकी हालत बिगड़ी है उसे और बिगाड़ते हैं और जो सब तरह से समर्थ है, जिसे कुछ वश नहीं चलता, उसके सामने हाथ फैलाते हैं, हाँ में हाँ मिलाते हैं। अतः इस संसार में सभी स्वार्थ के ही मित्र हैं, बिना स्वार्थ के एक श्रीरामचन्द्र जी ही हितैषी हैं ॥ ५२ ॥

स्वारथ सीताराम सों, परमारथ सियराम।
तुलसी तेरो दूसरे द्वार कहाँ कहु काम ॥ ५३ ॥

स्वार्थ की सिद्धि भी श्रीसीताराम ही से है और परमार्थ की भी सियाराम ही से है तो हे तुलसी! तुझे दूसरे द्वार से क्या प्रयोजन। भाव यह कि स्वार्थ और परमार्थ सब की सिद्धि श्रीरामचन्द्र जी से ही होती है फिर अन्य देवी देवताओं की उपासना से लाभ ही क्या? ॥ ५३ ॥

स्वारथ परमारथ सकल सुलभ एक ही ओर।
द्वार दूसरे दीनता उचित न तुलसी तोर ॥ ५४ ॥

स्वार्थ और परमार्थ सभी कुछ सुगमता से एक ही ओर, श्रीरामचन्द्र जी से ही प्राप्त हैं। अतः हे तुलसी! तुझे दूसरे द्वार (अन्य देवी देवताओं की उपासना करने में) दीनता दिखानी उचित नहीं। क्योंकि व्यर्थ ही है ॥ ५४ ॥

तुलसी स्वारथ रामहित, परमारथ रघुबीर।
सेवक जाके लषन से पवनपूत रनधीर ॥ ५५ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि स्वार्थ में हित करने वाले श्रीरामचन्द्र जी ही हैं और परमार्थ के हित करने वाले श्रीरघुवीर ही हैं जिनके सेवक रणधीर श्रीलक्ष्मण जी और हनुमान जी हैं। भाव यह कि जिसके सेवक ऐसे सामर्थ्य वाले हैं उस प्रभु के सामर्थ्य का कहना क्या है ॥ ५५ ॥

ज्यों जग बैरी मीन को, आपु सहित, बिनु बारि ।
त्यों तुलसी रघुबीर बिन गति आपनी बिचारि ॥ ५६ ॥

जैसे जल के बिना मछली का बैरी उसके परिवार सहित सारा संसार है तुलसीदास भी श्रीरामचन्द्र जी के बिना अपनी वही हालत समझते हैं। भाव यह कि जैसे मछली का शत्रु और तो है ही पर मछली ही मछली का शत्रु है, बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है, वैसे ही पुत्र कलत्र ये सब शत्रु ही हैं, माया जाल में फँसाने वाले हैं, अतः बिना कारण माया जाल से छुड़ाने वाले श्रीरामचन्द्र जी ही हैं ॥ ५६ ॥

राम प्रेम बिनु दूबरो, रामप्रेम ही पीन ।
रघुबर कबहुँक करहुगे, तुलसी ज्यों जल मीन ॥ ५७ ॥

हे रघुवर ! तुलसीदास को क्या कभी ऐसा बनाओगे कि राम प्रेम के बिना दुर्बल और राम प्रेम से मोटा रहे जैसे जल के बिना मछली। भाव यह कि जैसे जल के साथ मछली का अनन्य प्रेम है, वह जल से बाहर होते ही प्राण छोड़ देता है, वैसे ही मुझ तुलसी को भी अपना अनन्य प्रेमी बनाओगे ॥ ५७ ॥

राम सनेही, राम गति, रामचरन-रति जाहि ।
तुलसी फल जग-जन्म को दियो बिधाता ताहि ॥ ५८ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जो राम के प्रेमी हैं, जिसकी गति राम ही में है और जिसका श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में प्रेम है उसी को संसार में जन्म लेने का फल ब्रह्मा ने दिया। अर्थात् राम भक्त होने से ही मनुष्य जीवन सार्थक है ॥ ५८ ॥

आपु आपने तें अधिक जेहि प्रिय सीताराम ।
तेहिके पग की पानहीं तुलसी तनु को चाम ॥ ५९ ॥

अपने से और अपने सम्बन्धियों से जिसको अधिक प्यारा श्रीसीताराम हैं, उसके पैर की पनही का चमड़ा तुलसीदास जी के शरीर का चमड़ा है। भाव यह कि रामभक्तों के पैर की पन ही बनना भी श्रेयस्कर है ॥ ५९ ॥

स्वारथ - परमारथ - रहित सीताराम - सनेह ।
तुलसी सो फल चारि को फल हमार मत एह ॥ ६० ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि हमारा तो मत यह है कि चारों फल अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष का फल स्वार्थ और परमार्थ रहित श्रीसीताराम में स्नेह होना ही है ॥ ६० ॥

जे जन रूखे विषयरस, चिकने राम सनेह।
तुलसी ते प्रिय राम को कानन बसहिं कि गेह ॥ ६१ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जो मनुष्य विषय रस (शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श इन) से उदासीन रहते हैं और श्रीरामचन्द्र जी के प्रेम से चिकने हैं अर्थात् उनकी सेवा में लीन हैं, वे श्रीरामचन्द्र जी के प्यारे हैं, चाहें वे वन में रहें या घर में ॥ ६१ ॥

यथा लाभ संतोष सुख, रघुबर-चरन-सनेह।
तुलसी जो मन खूँद सम कानन बसहु कि गेह ॥ ६२ ॥

जो कुछ मिल जाय उसी में सन्तोष है और श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में प्रेम है तो इसी में सुख है। पर यदि मन घोड़े के समान उछल कूद करता है, चलायमान रहता है तो चाहे वन में रहो या घर में इससे परमानन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती। सन्तुष्ट रहने और भगवान् के चरणों में प्रेम करने से ही परमानन्द मिल सकता है, अन्यथा नहीं ॥ ६२ ॥

तुलसी जो पै राम सों, नाहिंन सहज सनेह।
मुँड मुड़ायो बादि ही, भाँड भयो तजि गेह ॥ ६३ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि यदि श्रीरामचन्द्र जी से सरल प्रेम नहीं हुआ तो सिर मुँडवाना व्यर्थ ही हुआ। घर छोड़ कर भाँड़ ही हुआ। अर्थात् श्रीराम की भक्ति के बिना सिर मुडा संन्यासी बनने ही से कुछ लाभ नहीं हुआ क्योंकि देखने में तो विरागी और हृदय में विषयवासना से भरपूर, यह तो भाँड़ के समान स्वांग ही रचना है ॥६३॥

तुलसी श्रीरघुबीर तजि करै भरोसो और।
सुख संपति की का चली नरकहु नाहीं ठौर ॥ ६४ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र जी को छोड़ कर जो दूसरे का भरोसा करता है, उसकी सुख-सम्पत्ति की बात कहना क्या? यह तो मिल ही नहीं सकती, नरक में भी उसे ठौर नहीं, अर्थात् ऐसे पापी को नरक में भी स्थान नहीं मिलता ॥ ६४ ॥

तुलसी परिहरि हरि हरहि पांवर पूजहिं भूत।
अंत फजीहति होहिंगे गनिका के से पूत ॥ ६५ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जो विष्णु और शिव को छोड़ भूतों की पूजा करता है उस नीच की अन्त में ऐसी खराबी होती है जैसे वेश्या के पुत्र की। अर्थात् जैसे वेश्या पुत्र का निश्चित पिता न होने से वह कहीं आदर नहीं पाता वैसे ही भूत पूजकों को अच्छी गति नहीं मिलती ॥ ६५ ॥

सेये सीता राम नहिं, भजे न संकर गौरि।
जनम गँवायो बादि ही परत पराई पौरि ॥ ६६ ॥

जिसने सीताराम की सेवा नहीं की और शिव पार्वती का भजन नहीं किया, उसने पराये दरवाजे पर (भूतप्रेतादिकों की उपासना में) पड़ कर व्यर्थ ही जन्म बिताया ॥ ६६ ॥

तुलसी हरि अपमान तें होइ अकाज समाज।
राजकरत रज मिलि गये सदल सकुल कुरुराज ॥ ६७ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि भगवान् के अपमान से समाज की हानि होती है, नष्ट हो जाता है। कुरुराज दुर्योधन राज्य करते हुए, सपरिवार और दल सहित धूल में मिल गया* ॥ ६७ ॥

तुलसी रामहिं परिहरे निपट हानि सुनु ओझ।
सुरसरिगति सोई सलिल, सुरा सरिस गंगोझ ॥ ६८ ॥

हे चतुर ! सुनो, श्रीरामचन्द्र जी को त्यागने से अत्यन्त हानि होती है। क्योंकि गंगा जी का वही जल गंगा से पृथक् हो जाने पर मदिरा तुल्य हो जाता है† ॥ ६८ ॥

* पाण्डवों की वनवास की अवधि समाप्त होने पर श्रीकृष्ण भगवान् इनकी ओर से सन्धि के लिये दुर्योधन के यहाँ गये उस समय दुर्योधन ने इनका अपमान किया और कहा कि सूई की नोक के बराबर भी मैं जगह न दूँगा। जिसका फल यह हुआ कि महाभारत की लड़ाई में सपरिवार और ससैन्य मारा गया। इसी बात को कवि ने इस दोहें में दर्शायी है।

† गङ्गायाः निस्सृतं तोयं पुनर्गङ्गां न गच्छति।
त तोयं मदिरा तुल्यं पीत्वा चन्द्रायणं चरेत ॥

गङ्गा जी से अलग हुआ जल (गङ्गा के बंधे हुए सोते का जल) यदि पुनः गङ्गा में नहीं जाता तो वह मदिरा तुल्य हो जाता है, उसके पीने पर चन्द्रायण व्रत (पाप निवारणार्थ) करना चाहिये।

राम दूरि माया बढ़ति, घटति जानि मन माँह ।
भूरि होति रवि दूर लखि सिर पर पगतर छाँह ॥ ६९ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के दूर होने पर, भजन न करने पर माया (संसारी विषय वासना) बढ़ती है और मन में जान, स्मरण करने से घटती (दूर होती) है। जैसे सूर्य के दूर होने पर परछाहीं बड़ी हो जाती है और सूर्य के सिर पर आने पर छोटी। यहाँ श्रीरामचन्द्र जी सूर्य हैं, माया छाया है ॥ ६९ ॥

साहिब सीतानाथ सों जब घटिहै अनुराग ।
तुलसी तबहिं भाल तें भभरि भागि हैं भाग ॥ ७० ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि सीतानाथ श्रीरामचन्द्र जी से जब प्रेम कम हो जायगा तब ललाट से भाग्य खलबला कर भाग जायगा। भाव यह कि श्रीरामचन्द्र जी में स्नेह रखने ही से सुख सौभाग्य प्राप्त हो सकता है, अन्यथा नहीं ॥ ७० ॥

करिहौ कोसलनाथ तजि जबहि दूसरी आस ।
जहाँ तहाँ दुख पाइ हौ तब हीं तुलसीदास ॥ ७१ ॥

हे तुलसीदास! कोशलनाथ श्रीरामचन्द्र जी को छोड़ कर जब ही दूसरे की आशा करोगे तभी जहाँ तहाँ (सर्वत्र) दुःख ही पावोगे। गोस्वामी जी अपने को सम्बोधन कर संसार को चेतावनी दे रहे हैं ॥ ७१ ॥

बिंध न ईंधन पाइये, सागर जुरै न नीर ।
परै उपास कुबेरघर जो बिपच्छ रघुबीर ॥ ७२ ॥

जो श्रीरामचन्द्र जी से विपरीत हुआ, उनकी शरण में नहीं गया वह विंध्य पर्वत पर (जहाँ लकड़ियों की भरमार है) जलाने के लिये लकड़ी नहीं पावेगा और कुबेर के घर (जो ऐश्वर्यादि के प्रभु हैं) उपवास पड़ेगा, भोजन तक न पावेगा। भाव यह कि श्रीराम विमुखी को कहीं शरण नहीं मिल सकती ॥ ७२ ॥

बरषा को गोबर भयो, को चहै, को करै प्रीति ।
तुलसी तू अनुभवहि अब राम-बिमुख की रीति ॥ ७३ ॥

वर्षा ऋतु के गोबर को न तो कोई चाहता है न प्रेम ही करता है। हे तुलसी! तू इस उदाहरण से अनुभव कर ले कि श्रीरामविमुखी को न कोई आदर ही करता है न चाहता ही है ॥ ७३ ॥

सबहि समरथहि सुखद प्रिय, अच्छम प्रिय हितकारि ।
कबहुँ न काहुहि राम प्रिय तुलसी कहा बिचारि ॥ ७४ ॥

समर्थ को सुख देने और प्यार करने वाले सभी हैं, पर असमर्थ को कोई प्यार और हित करने वाला कभी नहीं है (यदि कोई है तो) निःस्वार्थ प्रेम करने वाले श्रीरामचन्द्र जी हैं, यह बात तुलसीदास जी ने विचार सहित कही है ॥ ७४ ॥

तुलसी उद्यम करम जुग जब जेहि राम सुडीठि ।
होइ सुफल सोइ, ताहि सब सनमुख, प्रभु तन पीठि ॥ ७५ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि पूर्व जन्म के कर्मानुसार उसीका प्रयत्न सफल होता है जिस पर श्रीरामचन्द्र जी की कृपादृष्टि होती है और वह कार्य और उस कार्य के करने वाले के सारे कार्य सिद्ध होते और भगवान् उसके सम्मुख हो जाते हैं और वह कार्य साधक अपने शरीर से विमुख हो जाता है । अथवा तुलसीदास जी कहते हैं कि जब जिस पर श्रीरामचन्द्र जी की कृपा दृष्टि होती है तब उसके सब होते हैं उद्योग और कर्म ये दोनों सफल होते हैं और जब शरीर से विमुख होता है तो श्रीरामचन्द्र जी सम्मुख होंगे । अथवा तुलसीदास जी कहते हैं कि मनुष्य जितने उद्योग धन प्राप्ति या यज्ञादि कर्म के लिए करता है वे तभी सफल होते हैं जब श्रीरामचन्द्र जी की कृपादृष्टि उस पर होती है, उसके अनुकूल सब लोग हो जाते हैं और प्रभु श्रीरामचन्द्र जी का दर्शन प्राप्त होता है, उसका देहाभिमान सब दूर हो जाते हैं ॥ ७५ ॥

प्रेम-कामतरु परिहरत, सेवत कलितरु ठूँठ ।
स्वारथ परमारथ चहत, सकल मनोरथ झूँठ ॥ ७६ ॥

लोग श्रीरामचन्द्र जी के प्रेम रूपी कल्पवृक्ष को छोड़ कर कलिकाल रूपी वृक्ष (विषयवासना) का सेवन करते हैं, पर चाहते हैं लौकिक और पारलौकिक सुख, किन्तु ये उसके मनोरथ झूँठ हैं । क्योंकि श्रीरामचन्द्र जी के भजन विना स्वार्थ परमार्थ की प्राप्ति नहीं हो सकती ॥ ७६ ॥

निज दूषनु, गुन राम के समुझे तुलसीदास* ।
होय भलो कलिकाल हू उभय लोक अनयास ॥ ७७ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि यदि मनुष्य अपने दुर्गुणों को समझे अर्थात् अपने को यह समझे कि मैं दोषों से भरा हूँ और श्रीरामचन्द्र जी के गुणों को (कि एक वार

* जैसा भरत जी कहते हैं —

राम सुस्वामी कुसेवक मोसो । निज दिसि देखि दयानिधि पोसो ॥

नाम स्मरण करने ही से अधमों का उद्धार करते हैं तो) कलियुग में दोनों लोक अर्थात् इस संसार और परलोक में भला हो ॥ ७७ ॥

के तोहिं लागहिं राम प्रिय, कै तू प्रभु प्रिय होहि ।
दुई महँ रुचै जो सुगम सो कीबे तुलसी तोहि ॥ ७८ ॥

या तो तुझे श्रीरामचन्द्र जी प्यारे लगें या तू प्रभु श्रीरामचन्द्र जी को प्रिय लग। अर्थात् अनन्य मन से तू श्रीरामचन्द्र जी की भक्ति कर, या तू उनकी ऐसी सेवा कर जिसे वे तेरा प्यार करें, तुलसीदास जी कहते हैं कि इन दोनों में से जो तुझ को अच्छा लगे और सहल जान पड़े वही कर ॥ ७८ ॥

तुलसी दुई महँ एकही खेल, छाँड़ि छल, खेलु ।
कै करु ममता राम सों कै ममता परहेलु ॥ ७९ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि छल छोड़ कर दो खेल में से एक ही खेल खेल या तो श्रीरामचन्द्र जी से प्रेम कर या ममत्व (अपनापन) को छोड़ दे। भाव यह कि यदि श्रीरामचन्द्र जी से प्रेम करेगा तब तो तेरी भलाई है ही, वे तुझे अपना लेंगे और अपनापन को त्याग देगा, संसारी मायाजाल से विरक्त हो जायगा तो भी श्रीरामचन्द्र जी ही से तेरा स्नेह हो जायगा, दोनों दशा में तेरी भलाई ही है ॥ ७९ ॥

निगम अगम, साहेब सुगम, राम साँचिलो चाह ।
अंबु असन अवलोकियत सुलभ सबै जग माह ॥ ८० ॥

वेद शास्त्रों से भी न जानने योग्य प्रभु श्रीरामचन्द्र जी सच्चे प्रेम से वैसे ही मिलते हैं जैसे जल सुगमता से सारे संसार में प्राप्त होता है ॥ ८० ॥

सनमुख आवत पथिक ज्यों दिये दाहिनो बाम ।
तैसोइ होत सु आपको, त्योंही तुलसी राम ॥ ८१ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि हे राम ! सीधे (भक्ति मार्ग से आता हुआ) पथिक मोक्ष के अभिलाषी) दायें और बायें रास्ते को त्यागता हुआ उस पथ के समाप्ति पर पहुँचता है त्योंही वह आपका हो जाता है। भाव यह कि वह मुमुक्षु जो अन्य देवी देवता भूतादि की उपासना त्याग कर केवल आपके ही शरण में आता है, वह आपका हो जाता है, आपके धाम को पहुँच जाता है ॥ ८१ ॥

राम-प्रेम-पथ पेषिये दिये विषय तनु पीठि।
तुलसी केंचुरि परिहरे होन साँपहूँ डीठि॥ ८२॥

विषय को त्याग कर श्रीरामचन्द्र जी के प्रेम पथ को देखो क्योंकि केचुल छोड़ने पर ही साँप के दृष्टि होती है। भाव यह कि जब तक साँप केंचुल सहित रहता है, तब तक वह मद माता रहता है, वैसे ही संसारी विषयों में लिप्त मनुष्य लाभ, मोह, क्रोध, अहंकार आदि में चूर रहता है। विषय त्यागने ही से ज्ञान उत्पन्न होता है और तभी श्रीरामचन्द्र जी के भक्तिमार्ग का पथिक बनता है॥ ८२॥

तुलसी जौलौं विषय की, मुधा माधुरी मीठि।
तौलौं सुधा सहस्र सम राम भगति सुठि सीठि॥ ८३॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जब तक विषय की झूँठी मिठाई मीठी लगती है, तब तक सहस्र अमृत के समान रामभक्ति की मिठाई निरस लगती है। भाव यह कि इन्द्रियों को विषय रस अवश्य मीठे लगते हैं, पर इनका अन्तिम परिणाम बुरा ही होता है, क्योंकि विषय में लीन रहने से रामभक्ति अच्छी नहीं लगती और बिना राम भक्ति के चौरासी लाख योनियों में आवागमन लगा ही रहता है। अतः इस तत्काल निरस लगने वाली रामभक्ति ही का आस्वादन करे जिसका अन्तिम फल मीठा है॥ ८३॥

जैसो तैसो रावरो केवल कोसलपाल।
तौ तुलसी को है भलो तिहूँ लोक तिहुँ काल॥ ८४॥

हे कोशलपाल! जैसा तैसा बुरा या भला यदि आपका हो कर रहूँगा तो तीनों लोक और तीनों काल ही में मेरा भला है अन्यथा नहीं॥ ८४॥

है तुलसी के एक गुन अवगुननिधि कहैं लोग।
भलो भरोसो रावरो राम रीझिबे जोग॥ ८५॥

लोग मुझे अवगुणों के भण्डार कहते हैं, पर मुझ तुलसी में एक गुण है, हे राम! (वह गुण यह है कि) मुझे आप ही का भरोसा है, और यही आपके प्रसन्न करने के लायक है। भाव यह कि जो सब की आशा छोड़ भगवान् की शरण में जाता है उसे प्रभु अपना लेते हैं॥ ८५॥

प्रीति राम सों, नीतिपथ चलिय राग रिस जीति।
तुलसी संतन के मते इहै भगति की रीति॥ ८६॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि सन्तों के मत से भक्ति की यही रीति है कि श्रीरामचन्द्र जी से प्रेम करे, नीति पथ पर चले, क्रोध और राग को जीते। अथवा गोस्वामी जी कहते हैं कि भक्ति की प्राप्ति का सरल मार्ग यही है कि श्रीरामचन्द्र जी को हृदय में रख कुल धर्मानुसार सत्य को ग्रहण कर मोह क्रोधादि को जीतकर सज्जनों की सम्मति से चले ॥ ८६ ॥

सत्य बचन, मानस बिमल, कपट रहित करतूति।
तुलसी रघुबर सेवकहि, सकै न कलिजुग धूति ॥ ८७ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं, जो सत्य बोलने वाला है, जिसका मन निर्मल है और जिसके कार्य छल रहित हैं, ऐसे जो श्रीरामचन्द्र जी के सेवक हैं, उन्हें कलियुग धोखा नहीं दे सकता, अर्थात् वे विषय वासना में नहीं फँस सकते ॥ ८७ ॥

तुलसी सुखी जो राम सों, दुखी सो निज करतूति।
करम बचन मन ठीक जेहि तेहि न सकै कलि धूति ॥ ८८ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जो सुखी है वह श्रीरामचन्द्र जी की कृपा ही से है और जो दुःखी है वह अपनी करनी से (क्योंकि जीव अपने कर्मों का ही फल भोगता है) क्योंकि जो मन, वचन और कर्म से ठीक (शुद्ध) है उसे कलियुग धोखा नहीं दे सकता, माया जाल में नहीं फाँस सकता ॥ ८८ ॥

नातो नाते राम के, रामसनेह सनेहु।
तुलसी माँगत जोरी कर जनम जनम शिव देहु ॥ ८९ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं—हे शिव ! आप से हाथ जोड़ कर मैं यह माँगता हूँ कि जन्म जन्मान्तर में मेरा सम्बन्ध उन्हीं से हो जो श्रीरामचन्द्र जी के स्नेही हैं। अथवा हे शिव ! श्रीरामचन्द्र जी के नाते से आपका मेरा नाता है, (आप श्रीराम जी को भजते हैं मैं भी उन्हीं को भजता हूँ) अतः मैं हाथ जोड़ कर आपसे यही माँगता हूँ कि जन्म जन्मान्तर में श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में प्रेम दीजिए ॥ ८९ ॥

सब साधन को एक फल, जेहि जान्यो सोइ जान।
ज्यों त्यों मन मन्दिर बसहिं राम धरे धनु बान ॥ ९० ॥

यम, संयम, नियम, जप, तप, यज्ञादि सब साधनों का एकही फल है कि जिस किसी तरह मन रूपी मन्दिर में धनुष बाण धारी श्रीरामचन्द्र जी निवास करें, इस बात को जो

जानता है वही जानता है। भाव यह कि जो श्रीरामचन्द्र जी की भक्तवत्सलता को जान जाता है, वह अन्य उपासनादि को त्याग कर उन्हीं की भक्ति करता है॥ ९० ॥

जौ जगदीस तौ अति भलौ, जौ महीस तौ भाग।
तुलसी चाहत जनम भरि रामचरन अनुराग॥ ६१ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि यदि श्रीरामचन्द्र जी संसार के प्रभु (ईश्वर) हैं तो भी भला है और यदि राजा हैं तो भी हमारा भाग्य ही है (दोनों दशा में) मैं उनके चरणों में जीवन पर्यन्त प्रेम चाहता हूँ॥ ९१ ॥

परहुँ नरक, फलचारि-सिसु, मींच डाकिनी खाउ।
तुलसी राम सनेह को, जो फल सो जरि जाउ॥ ६२ ॥

चाहें नरक में पड़ूँ या चारों फल (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) रूपी बालक को मृत्यु या डाकिनी खा जाय, तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र जी के स्नेह के जितने फल हों वे भी जल जायँ। भाव यह कि श्रीराम के भक्त अर्थ, धर्म, काम मोक्ष, कुछ चाहते ही नहीं, वे चाहते हैं केवल अपने इष्टदेव की पदधूली अतः उनके लिए मुक्ति का कोई महत्व नहीं इसी से गोस्वामी जी सब की उपेक्षा कर केवल श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में भक्ति चाहते हैं॥ ९२ ॥

हित सों हित, रति राम सों, रिपु सों बैर बिहाउ।
उदासिन सब सों सरल, तुलसो सहज सुभाउ॥ ६३ ॥

हितैषियों से हित कर, श्रीराम से प्रेम कर, शत्रु से शत्रुता दूर बहा दे, फिर भी सब से उदासिन रह। हे तुलसी! तुम्हारा ऐसा ही सहज स्वभाव हो। गोस्वामी जी अपने प्रति लक्ष्य करके संसार को उपदेश देते हैं, संसारी कार्यों को करते हुए भी उनमें लिप्त न होवे। अपने मन को स्थिर करके श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में लगावे॥ ९३ ॥

तुलसी ममता राम सों, समता सब संसार।
राग न रोष न दोष दुख, दास भये भवपार॥ ६४ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जो श्रीरामचन्द्र जी के प्रेमी हैं, संसार को समान दृष्टि से देखते हैं, जिन्हें न राग है न द्वेष, न शोक है न दुःख जो श्रीरामचन्द्र जी के सेवक हो गये हैं वे संसार सागर के पार हो गये, जीवन्मुक्त हो गये॥ ९४ ॥

रामहि डरु, करु राम सों ममता, प्रीति, प्रतीति।
तुलसी निरुपधि राम को भये हारेहू जीति॥ ६५ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र जी से ही डरो, उन्हीं को अपनाओ, उन्हीं से प्रेम करो, उन्हीं का विश्वास करो, निरुपधि उपाधि हीन त्रिगुण परे भगवान् श्रीरामचन्द्र जी का भली भाँति भजन न करने पर भी जीत ही है, मन चाहा फल अवश्य ही मिल जाता है ॥ ९५ ॥

तुलसी राम कृपालु सों कहि सुनाउ गुन दोष।
होय दूबरी दीनता, परम पीन संतोष ॥ ९६ ॥

हे तुलसी ! दयालु श्रीरामचन्द्र जी से अपना गुण अवगुण कह सुनाओ तो दीनता दुर्बल हो जायगी और सन्तोष अत्यन्त मोटा हो जायगा। अर्थात् मन में सन्तोष आ जाने पर किसी वस्तु की चाहना रही न जायगी, फिर दीनता आप ही क्षीण हो जायगी ॥ ९६ ॥

सुमिरन सेवा राम सो, साहब सों पहिचानि।
ऐसेहु लाभ न ललक जो तुलसी नित हित हानि ॥ ९७ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र जी ऐसे स्वामी के सुमिरन, सेवा और पहचान करने जैसे लाभ में चित्त न ललका तो नित्य ही हित की हानि होती है। अथवा तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र जी जैसे स्वामी का स्मरण, सेवा और पहिचान करने जैसे लाभ से भी जिसका मन उतावला नहीं होता ऐसों को नित के हित चाहने वाले कुटुम्बियों से हानि कहाँ ? जो श्रीरामचन्द्र जी की सेवा में एकाग्र मन से लगा हुआ है वह कुटुम्बियों के प्रेम फाँस में नहीं फँस सकता ॥ ९७ ॥

जाने जानन जोइये, बिनु जाने को जान।
तुलसी यह सुनि समुझि हिय आनु धरे धनुबान ॥ ९८ ॥

जान कर जानने की क्रिया में संलग्न हो क्योंकि बिना जाने कौन जान सकता है। तात्पर्य यह कि जो कार्य सिद्ध करना है उस कार्य में भली भाँति समझे बूझे बिना लग जाने पर सफलता नहीं मिलती। अतः तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र जी के रूप शील दया आदि गुणों को और उनकी प्राप्ति के मार्ग को शास्त्र या संतों के द्वारा समझ बूझ कर हृदय में धनुषधारी श्रीरामचन्द्र जी को ले आ। अथवा सद्गुरु आदि से श्रीरामचन्द्र जी के जानने की विधि पूछ क्योंकि अज्ञानि से कोई किसी तत्व को नहीं जान सकता। अथवा शास्त्र गुरु आदि के द्वारा शिक्षा प्राप्त कर उस बिनु जाने को जिसे वेद भी नेति (अन्त नहीं) कहते हैं जान। अतः भ्रम में मत भटक। तुलसीदास जी

कहते हैं कि यह मेरी बात सुन समझ कर हृदय में धनुषधारी श्रीरामचन्द्र जी को ले आ। अथवा गोस्वामी जी कहते हैं कि परात्पर परब्रह्म श्रीरामचन्द्र जी हैं, इस बात को जान कर मिथ्या ज्ञान को मत ढूँढ़। इस बात को स्वयं समझ और किसी दूसरे से सुन कर धनुषधारी श्रीरामचन्द्र जी को हृदय में ला ॥ ९८ ॥

करमठ कठमलिया कहैं, ज्ञानी ज्ञानबिहीन।
तुलसी त्रिपथ बिहाय गो रामदुआरे दीन ॥ ९९ ॥

कर्मकाण्डी कहते हैं कि यह कठमलिया है (व्यर्थ ही काठ की माला फेरा करता है) ज्ञानी कहते हैं इसे ज्ञान नहीं है, (यह निर्गुणोपासना को त्याग कर सगुण स्थूल वस्तु की उपासना करता है और शीघ्र आपकी सान्निध्य प्राप्ति के लिए मैंने उपासना को भी त्याग दिया) इस तरह से कर्म, ज्ञान और उपासनाकाण्ड से रहित हो कर मैं (तुलसी) श्रीरामचन्द्र जी के दरवाजे पड़ा हूँ ॥ ९९ ॥

बाधक सब सब के भये, साधक भये न कोइ।
तुलसी राम कृपालु तें भलो होइ सो होइ ॥ १०० ॥

कर्म, ज्ञान, उपासना इन तीन काण्डों के उपासकों से दुःखी हो तुलसीदास जी कहते हैं कि ये सब के सब हमारे बाधक ही हुए, मंडन करने वाला कोई नहीं हुआ। अब तो कृपालु श्रीरामचन्द्र जी से ही जो कुछ भला होने वाला होगा, वही होगा ॥ १०० ॥

संकरप्रिय मम द्रोही, सिवद्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलपभरी घोर नरक महँ बास ॥ १०१ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के कथन को तुलसीदास जी कहते हैं कि शिव का प्रिय मेरा (विष्णु का) शत्रु और शिव का शत्रु मेरा (विष्णु का) सेवक जो होता है, वह मनुष्य एक कल्प घोर नरक में बास करता है ॥ १०१ ॥

बिलग बिलग सुख संग दुख, जनम मरन सोइ रीति।
रहियत राखे राम कें, गये ते उचित अनीति ॥ १०२ ॥

श्रीरामचन्द्र जी का संग करके संसार से अलग ही रहने में सुख मिलता है। अर्थात् विषयवासना को त्याग कर श्रीरामभजन करने ही से सुख की प्राप्ति है और ऐसा ही जीवन योग्य है। श्रीरामचन्द्र जी को त्याग संसारी माया में फँसे रहने से दुःख होता है, ऐसा रहना योग्य नहीं, इसमें शीघ्र ही मृत्यु होती है, अर्थात् जन्म मरण लगा ही रहता है। अथवा संसार त्यागी होकर रहने ही में सुख है और संसार में लिप्त रहने

में दुःख। जीवन मोक्ष प्राप्ति और मरण (आवागमन) की यही रीति है। अतः श्रीरामचन्द्र जी को हृदय में रख करके ही जीना अच्छा है और उनके हृदय में से चले जाने से मरना ही उचित ॥ १०२ ॥

जाय कहब करतूति बिनु, जाय जोग बिनु छेम।
तुलसी जाय उपाय सब बिना रामपद प्रेम ॥ १०३ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जैसे बिना करनी के कथनी व्यर्थ है, जोग (अलभ्य वस्तु की लाभ) बिना क्षेम (प्राप्य पदार्थ की रक्षा) व्यर्थ है, वैसे ही श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में प्रेम बिना, संयम, नियम आदि मोक्ष के उपाय व्यर्थ हैं। भाव यह कि संयम, नियम, व्रत उपवासादि तीर्थयटन आदि अन्य साधनाओं से श्रीरामनाम में बिना प्रेम के मुक्ति नहीं होती ॥ १०३ ॥

लोग मगन सब जोग ही, जोग जाय बिनु छेम।
त्यों तुलसी के भावगतु रामप्रेम बिनु नेम ॥ १०४ ॥

सब लोग योग साधन में ही मग्न हैं, पर बिना कल्याण के योग में सफलता पाने में भय बना रहता है (क्योंकि अष्टाङ्ग योगों में से जहाँ कुछ योगों की सिद्धि हुई कि अभिमान आया और अभिमान आते ही सब करा कराया नष्ट हो जाता है) वैसे ही तुलसीदास के हृदय में यह भाव है कि श्रीरामचन्द्र जी के बिना प्रेम के सभी नेम, नियम, संयम, उपासनादि व्यर्थ हैं ॥ १०४ ॥

राम निकाई रावरी है सब ही को नीक।
जो यह साँची है सदा तौ नीको तुलसीक ॥ १०५ ॥

हे राम! आपकी भलाई से सभी का भला होता है, यदि यह सदा सत्य है तो तुलसी की भी भलाई होगी ही ॥ १०५ ॥

तुलसी राम जो आदरयो खोटो खरो खरोइ।
दीपक काजर सिर धरयो, धरयो सु धरयो धरोइ ॥ १०६ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र जी ने जिसका आदर किया, चाहें वह बुरा हो या भला, उसकी भलाई ही हुई है, जैसे काजल दिये से प्रेम करता है तो दिया भी उसको अपने सिर पर धारण किये ही रहता है। अर्थात् जैसे दीपक स्वच्छ ज्योति होने पर भी अपने प्रेमी काजल को सदा सिर पर

धारण किये रहता है, वैसे ही श्रीरामचन्द्र जी भी अपने भक्त को चाहे वह बुरा हो या भला उसकी भलाई ही करते हैं ॥ १०६ ॥

तनु बिचित्र कायर बचन अहि अहार मन घोर ।
तुलसी हरि भये पच्छधर, ताते कह सब मोर ॥ १०७ ॥

शरीर रंग बिरंगी है, वचन मधुर है और सर्प का भक्षण करने में मन बड़ा कठोर है उसके पक्ष का मुकुट (मोर मुकुट) हरि ने धारण किया तो सभी उसे मोर (मयूर) कहने लगे। भाव यह कि जिसे भगवान् अपना लेत हैं उसे सभी अपना लेते हैं ॥ १०७ ॥

लहै न फूटी कौड़िहू, को चाहै, केहि काज ।
सो तुलसी महँगो कियो राम गरीबनिवाज ॥ १०८ ॥

जिसे कोई न तो चाहता ही था, न किसी वह काम ही का था और न उसे फूटी कौड़ी ही मिलती थी, ऐसे तुलसीदास को भी गरीबनिवाज श्रीरामचन्द्र जी ने मँहगा किया, आदर का पात्र बनाया ॥ १०८ ॥

घर घर माँगे टूक, पुनि भूपनि पूजे पाय ।
जे तुलसी तब राम बिनु, ते अब राम सहाय ॥ १०९ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जिस पर श्रीरामचन्द्र जी की कृपा नहीं थी वह घर घर टुकड़ा माँगता था, पर उसी पर जब श्रीरामचन्द्र जी की कृपा हो गयी तब राजा लोग उसके चरण की पूजा करने लगे ॥ १०९ ॥

तुलसी राम सुदीठि तें निबल होत बलवान ।
बैर बालि सुग्रीव के कहा कियो हनुमान ॥ ११० ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र की कृपादृष्टि से निर्बल भी बलवान हो जाता है। क्योंकि सुग्रीव और वालि के शत्रुता होने पर हनुमान सुग्रीव के तरफ थे, पर कुछ कर नहीं पाये, पर इन्हीं पर जब भगवान् की कृपा हुई तो वे महाबीर हो गये, इन्होंने समुद्र पार किया, लङ्का जलाया, राक्षसी सेना के बड़े बड़े सेना नायकों को मार डाला ॥ ११० ॥

तुलसी रामहु तें अधिक राम भक्त जिय जान ।
रिनिया राजा राम भे, धनिक भये हनुमान ॥ १११ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र जी से बढ़ कर श्रीराम भक्तों को जानना चाहिये, क्योंकि राजा श्रीरामचन्द्र जी ऋनिया हुए और हनुमान जी महाजन हो गये भाव यह कि श्रीरामचन्द्र जी ऐसे कृतज्ञ हैं कि सेवकों के सेवा वश हो जाते हैं ॥ १११ ॥

कियो सुसेवक–धरम कपि, प्रभु कृतज्ञ जिय जानि ।
जोरि हाथ ठाढ़े भये बरदायक बरदानि ॥ ११२ ॥

हनुमान जी ने सेवक धर्म का पालन किया, पर उनके मन में यह बात आयी कि प्रभु कृतज्ञ हैं, किये हुये उपकार का बदला अवश्य देते हैं, अतः वे वर देने वाले देवताओं को भी वर देने वाले प्रभु श्रीरामचन्द्र जी के सामने हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। मुझे कोई वर न चाहिये, मैं आपकी चरणों ही की सेवा चाहता हूँ ॥ ११२ ॥

भगत-हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनुभूप ।
किये चरित पावन परम प्राकृत-नर-अनुरूप ॥ ११३ ॥

भगवान् प्रभु श्रीरामचन्द्र जी ने भक्तों के लिये राजा का शरीर धारण किया प्राकृत जनों की तरह परम पावन लीलाएँ की ॥ ११३ ॥

ज्ञान-गिरा-गोतीत, अज, माया-गुन-गोपार ।
सोइ सच्चिदानंदघन करत चरित्र उदार ॥ ११४ ॥

ज्ञान, गिरा और इन्द्रियों से परे, अजन्मा, माया रहित, गुण से परे सच्चिदानन्द भगवान् उदार चरित्र करते हैं ॥ ११४ ॥

हिरन्याक्ष भ्राता सहित, मधु कैटभ बलवान ।
जेहि मारे सोइ अवतरे कृपासिन्धु भगवान ॥ ११५ ॥

हिरण्याक्ष और उसका भाई हिरण्यकश्यपु और बलवान मधु कैटभ को जिसने मारा उन्हीं दयासागर भगवान् ने अवतार लिया है ॥ ११५ ॥

सुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानु-कुलकेतु ।
चरित करत नर अनुहरत संसृति-सागरसेतु ॥ ११६ ॥

शुद्ध सत् चित् आनन्द मय कन्द सूर्य कुलकेतु श्रीरामचन्द्र जी संसार सागर पर सेतु निर्माण के लिए (जिस से भक्त भव सागर के पार हों) मानव लीला करते हैं ॥ ११६ ॥

बाल-बिभूषन बसन बर धूरि-धूसरित अंग।
बालकेलि रघुबर करत, बाल बंधु सब संग ॥ ११७ ॥

बच्चपन के गहने और सुन्दर वस्त्र पहने तथा अंगों में धूल लपेटे श्रीरामचन्द्र जी छोटे भाइयों के साथ लड़कपन का खेल खेलते हैं ॥ ११७ ॥

अनुदिन अवध बधावने, नित नव मंगल मोद।
मुदित मातु पितु लोग लखि रघुबर बाल-बिनोद ॥ ११८ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के बाल क्रीडा को देख, माता पिता और अन्य सब लोग प्रसन्न होते हैं और अयोध्या में नित्य बधावा बजता है और नवीन नवीन आनन्दोत्सव होते हैं ॥ ११८ ॥

राज-अजिर राजत रुचिर कोसलपालक-बाल।
जानु-पानि-चर चरित बर, सगुन सुमंगल माल ॥ ११९ ॥

अयोध्या के महाराज दशरथ के बालक राजमहल के आँगन में सुन्दर शोभायमान हो रहे हैं, वे बकैंयां चलते हैं उनका यह सुन्दर चरित सगुन और मंगलों का माला है ॥ ११९ ॥

नाम ललित, लीला ललित ललित रूप रघुनाथ।
ललित बसन भूषन ललित, ललित अनुज सिसु साथ ॥ १२० ॥

श्रीरघुनाथ जी का नाम "राम" सुन्दर है। उनकी लीलाएँ सुन्दर हैं। उनका रूप सुन्दर है। उनके वस्त्र सुन्दर हैं। उनके गहने सुन्दर हैं और छोटे भइयों का सुन्दर साथ है ॥ १२० ॥

राम, भरत, लछिमन ललित, सत्रुसमन सुभ नाम।
सुमिरत दसरथ-सुवन सब पूजहिं सब मनकाम ॥ १२१ ॥

राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न ये शुभ नाम सुन्दर हैं। दशरथ के इन पुत्रों के स्मरण करने से सभी मनकामना पूर्ण होती हैं ॥ १२१ ॥

बालक कोसलपाल के सेवकपाल कृपाल।
तुलसी मन-मानस बसत मंगल मंजु मराल ॥ १२२ ॥

सेवकों के पालने वाले अयोध्या के महाराज दशरथ के दयालु पुत्र तुलसी के मन रूपी सरोवर में हंस रूप से विराजमान हैं ॥ १२२ ॥

भगत, भूमि, भूसुर, सुरभि, सुरहित लागि कृपाल ।
करत चरित धरि मनुज-तनु, सुनत मिटहिं जगजाल ॥ १२३ ॥

भक्त, भूमि, ब्राह्मण, गौ तथा देवताओं की भलाई के लिए दयालु श्रीरामचन्द्र जी मनुष्य शरीर धारण कर मानव लीलाएँ करते हैं जिसके सुनने से माया जाल दूर हो जाता है ॥ १२३ ॥

निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर, महि, गो, द्विज, लागि ।
सगुन उपासक संग तहँ रहे मोच्छ सब त्यागि ॥ १२४ ॥

देवता, पृथ्वी, गौ तथा ब्राह्मण के हित के लिए प्रभु श्रीरामचन्द्र जी अपनी इच्छा से अवतार लेते हैं । सगुण उपासक जो लोग हैं वे मोक्ष को त्याग कर भगवान् की सेवा में रहते हैं ॥ १२४ ॥

परमानन्द कृपायतन, मन परिपूरन–काम ।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहिं श्रीराम ॥ १२५ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि हे श्रीरामचन्द्र जी ! आप परमानन्द, कृपाधाम तथा भक्तों के मन की इच्छा को पूर्ण करने वाले हैं, आप अपनी प्रेम मयी अनपायिनी भक्ति दीजिए ॥ १२५ ॥

बारि मथे घृत होइ बरु सिकता तें बरु तेल ।
बिनु हरि भजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल ॥ १२६ ॥

जल मथने से घी भले ही निकल आवे और बालू पेरने से भले ही तेल निकले, पर बिना हरि श्रीरामचन्द्र जी के भजन के संसारसागर से मनुष्य तर नहीं सकता, यह अचल सिद्धान्त है ॥ १२६ ॥

हरिमाया-कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं ।
भजिय राम सब काम तजि अस बिचारि मन माहिं ॥ १२७ ॥

भगवान् के भजन के बिना, माया से उत्पन्न दोष गुण जा नहीं सकते, यह विचार कर सब कामों को छोड़ भगवान् को भजो ॥ १२७ ॥

जो चेतन कहँ जड करइ, जडहि करइ चैतन्य ।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य ॥ १२८ ॥

जो चेतन को जड और जड को चेतन करते हैं ऐसे समर्थ श्रीरामचन्द्र जी को जो जीव भजते हैं, वे धन्य हैं।

जीव ब्रह्म का अंश है, उसका वास्तविक स्वरूप सत् चित् आनन्द है, पर माया का परदा पड़ने से वह ब्रह्म से पृथक् हो जाता है, संसारी माया में लिप्त हो कर अपने वास्तविक स्वरूप को भूलने से जडवत् जीवन व्यतीत करता है। पुनः भगवान् की कृपा से वह अपने रूप को पहचान लेता है और ब्रह्म के अंश में मिल जाता है। अतः वह जड़ चेतन रूप में परिवर्तित होता रहता है।

अज्ञानावस्था में शरीर को छोड़ कर जीव पञ्चतत्व में मिल जाता है, पुनः जन्म धारण करता है। इस प्रकार जड चेतन रूप में परिवर्तित होता रहता है।

जड चेतन के उदाहरण और भी अनेक पाये जाते हैं। यथा—अहिल्या पति शाप से शिला हो गयी। पुनः रामावतार में श्रीरामचन्द्र जी ने उसे दिव्य शरीर दिया। इसी प्रकार नलकूबर दो गंधर्व थे। वे नारद जी के शाप से यमलार्जुन वृक्ष हो गये थे। इनका उद्धार भगवान् ने श्रीकृष्णावतार में किया। ये जडत्व से पुनः गंधर्व शरीर को पा गये॥ १२८॥

श्रीरघुबीर-प्रताप तें सिंधु तरे पाषान।
ते मतिमंद जो राम तजि भजहि जाय प्रभु आन॥ १२९॥

श्रीरामचन्द्र जी के प्रताप से पत्थर समुद्र में तैरता है, वे महा मूढ हैं जो श्रीराम को छोड़ अन्य प्रभु (देवी देवताओं) को भजते हैं॥ १२९॥

लव निमेष परमान जुग, बरष कलप सर चंड।
भजहि न मन तेहि राम कहँ काल जासु कोदंड॥ १३०॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि हे मन! तू उन श्रीरामचन्द्र जी का भजन क्यों नहीं करता जिनका काल धनुष है, तथा लव, निमेष, परमाणु, युग, वर्ष, कल्प ये तीक्ष्ण बाण हैं। तात्पर्य यह कि सदा रहने वाला समय जिसमें अनेक युगयुगान्तर बीत गये धनुष है। उस धनुष से निकलने वाला, लव (एक वार पलक गिरने का समय) निमेष (६० लव का १ निमेष) परमाणु (६० निमेष का एक परमाणु) ६० परमाणु का १ पल, ६० पल की एक घड़ी, ६० घड़ी की दिन रात, ३० दिन का महीना, बारह महीने का वर्ष, १०० वर्ष की मनुष्य की आयु, चार युग, सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलि, (चारों युगों के १ हजार वार बीत जाने को कल्प कहते हैं) ये तीखे बाण हैं, ऐसे श्रीरामचन्द्र जी को हे मन! तू क्यों नहीं भजन करता॥ १३०॥

तब लगि कुसल न जीव कहँ, सपनेहु मन बिस्राम ।
जब लगि भजत न राम कहँ सोकधाम तजि काम ॥ १३१ ॥

तब तक जीव को सुख नहीं होता, मन स्वप्न में भी आराम नहीं पाता जब तक सब काम धंधाओं को छोड़ कर श्रीरामचन्द्र जी को नहीं भजता ॥ १३१ ॥

बिनु सतसंग न हरिकथा, तेहि बिनु मोह न भाग ।
मोह गये बिनु राम पद होय न दृढ अनुराग ॥ १३२ ॥

बिना सत्संग के हरिचर्चा नहीं होती और हरि कथा के बिना अज्ञान दूर नहीं होता अज्ञान के दूर हुए बिना श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में दृढ प्रेम नहीं होता ॥ १३२ ॥

बिनु बिस्वास भगति नहीं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम ।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिस्राम ॥ १३३ ॥

बिना विश्वास के भक्ति नहीं होती, बिना भक्ति के श्रीरामचन्द्र जी द्रवते नहीं, (दया नहीं करते) और श्रीरामचन्द्र जी के दया के बिना जीव स्वप्न में भी विश्राम नहीं पाता, उसका आवागमन लगा रहता है ॥ १३३ ॥

॥ सोरठा ॥

अस बिचारि मन धीर तजि कुतर्क संसय सकल ।
भजहु राम रघुबीर करुनाकर सुंदर सुखद ॥ १३४ ॥

ऐसा विचार कर, मन में धीरज धर, सब कुतर्क और संशयों को दूर बड़ा करुणा के खानि सुन्दर सुख देने वाले श्रीरामचन्द्र जी को भजो ॥ १३४ ॥

भाववस्य भगवान सुखनिधान करुनाभवन ।
तजि ममता, मद, मान, भजिय सदा सीता रमन ॥ १३५ ॥

भगवान् श्रीरामचन्द्र जी भाव के वश रहते हैं, ऐसे सुख के भण्डार, दयाधाम सीता रमण को, अपना परायापन, अहंकार तथा मान को त्याग सदा भजे ॥ १३५ ॥

कहहिं बिमलमति संत वेद पुरान बिचारि अस ।
द्रवैं जानकीकंत, तब छूटै संसारदुख ॥ १३६ ॥

वेद और पुराणों को विचार कर विशुद्ध बुद्धि वाले संतजन कहते हैं कि जब जानकीनाथ दया करते हैं तब संसारी दुःख छूट जाता है ॥ १३६ ॥

बिनु गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ बिराग बिनु ।
गावहिं वेद पुरान, सुख कि लहिय हरि भगति बिनु ॥ १३७ ॥

बिना गुरु के क्या ज्ञान हो सकता है ? वैराग के बिना क्या ज्ञान उत्पन्न हो सकता है ? वेद पुराण गाते हैं कि हरि भक्ति के बिना क्या सुख मिल सकता है । कदापि नहीं मिलता ॥ १३७ ॥

दोहा

रामचन्द्र के भजन बिनु जो चहै पद निर्वान ।
ज्ञानवंत अपि सोइ नर पसु बिनु पूछ बिखान ॥ १३८ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के भजन बिना जो मोक्ष चाहता है, वह ज्ञानी मनुष्य भी बिना पूँछ सींग के पशु है । भाव यह कि वह ज्ञानी मनुष्य, जो श्रीराम की भक्ति किये बिना ही अन्य साधनों द्वारा मोक्ष चाहता है वह पशु तुल्य है । पशु और उसमें यही अन्तर है कि पशु की पूँछ और सींग होती हैं और उस मनुष्य के नहीं ॥ १३८ ॥

जरउ सो संपति, सदन, सुख, सुहृद, मातु, पितु, भाइ ।
सनमुख होत जो रामपद करइ न सहज सहाइ ॥ १३९ ॥

वह सम्पति, घर, सुख, मित्र, माता, पिता, भाई आदि जल जायँ, नष्ट हो जायँ, जो श्रीरामचन्द्र जी के चरणों के सम्मुख होने में स्वाभाविक सहायता नहीं करते ॥ १३९ ॥

सेइ साधु गुरु, समुझि, सिखि, राम भगति थिरताइ ।
लरिकाईं को पैरिबो तुलसी बिसरि न जाइ ॥ १४० ॥

साधु और गुरु की सेवा करने पर, उनकी बताई हुई शिक्षा को समझ लेने पर श्रीरामचन्द्र जी की भक्ति स्थिर हो जाती है जैसे लरिकाई का सिखा हुआ तैरना फिर नहीं भूलता । बहुत दिनों तक व्यवहार में न लाने पर भी वह समय पड़े पर काम दे जाता है । भाव यह है कि श्रीरामचन्द्र जी की भक्ति अलख और अव्यक्त है । उसकी प्राप्ति का साधन केवल सन्त जन और गुरु हैं । अतः तुलसीदास जी का कथन है कि साधु और गुरु जन की सीख को बाल्यावस्था से ही ग्रहण करे । यद्यपि बुद्धि की अपरिपक्व दशा में उसका भलि भाँति समझना कठिन है । तथापि हृदय में संस्कार जम जाने पर प्रौढावस्था में वह प्रस्फुटित हो जाती है । बाल-हृदय रूपी क्षेत्र में अंकुरित श्रीरामचन्द्र की भक्ति का बीज अगे चल कर दृढ़ वृक्ष के रूप में स्थित हो जाता है ॥ १४० ॥

सबै कहावत राम के, सबहि राम की आस।
राम कहै जेहि आपनो, तेहि भजु तुलसीदास॥ १४१॥

जितने जीव हैं सभी श्रीरामचन्द्र जी के कहाते हैं और सभी को श्रीरामचन्द्र जी की आशा है। पर श्रीरामचन्द्र जी जिसको अपना कहते हैं, हे तुलसी! उसको तुम भजो। भाव यह कि भगवान् को अपने भक्त बड़े प्यारे हैं, अतः उनके भक्त को भजने से भगवान् दयालु होते हैं और अपने शरण में ले लेते हैं॥ १४१॥

जेहि सरीर रति राम सो सोइ आदरैं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेह-बस बानर भे हनुमान॥ १४२॥

जिस शरीर से श्रीरामचन्द्र जी में प्रेम होता है, उसी शरीर को बुद्धिमान जन आदर करते हैं। प्रेम के वश हो शिव शरीर को छोड़ हनुमान वानर हुए। अर्थात् शिव जी ने अपने शरीर को छोड़ भक्ति वश बानर के शरीर को ही आदर किया। हनुमान जी शङ्कर के अवतार माने जाते हैं॥ १४२॥

जानि राम सेवा सरस, समुझि करब अनुमान।
पुरुखा ते सेवक भये, हरते भे हनुमान॥ १४३॥

श्रीरामचन्द्र जी की सेवा सहल है यह समझ कर अनुमान करो क्योंकि पुरुखा (अवस्था में बड़े होने पर भी) हनुमान जी सेवक हुए और शिव जी से हनुमान (वन्दर शरीरधारी) हुए॥ १४३॥

तुलसी रघुबर-सेवकहि खल डाटत मन माखि।
बाजराज के बालकहि लवा दिखावत आँखि॥ १४४॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र जी के सेवक को दुष्ट मन में क्रुद्ध होकर डाँटते हैं मानो बाज पक्षी के बालक को लवा आँख दिखाता है॥ १४४॥

रावन रिपु के दास ते कायर करहिं कुचालि।
खर दूषन मारीच ज्यों, नीच जाहिंगे कालि॥ १४५॥

रावण के शत्रु श्रीरामचन्द्र जी के सेवक से जो नीच बुरा वर्ताव करते हैं, वे खर, दूषण तथा मारीच की तरह शीघ्र ही नष्ट हो जायँगे॥ १४५॥

पुन्य, पाप, जस, अजस के भावी भाजन भूरि।
संकट तुलसीदास के राम करहिं गे दूरि॥ १४६॥

यह शरीर पाप पुण्य, यश अयश का पात्र है, तुलसीदास के सङ्कट को श्रीरामचन्द्र जी ही दूर करेगें। भाव यह कि मानव शरीर से पाप, पुण्य, यश, अपयश सभी कार्य होते रहते हैं इस कारण से मनुष्य को दुःख उठाना पड़ता है, यह दुःख श्रीरामचन्द्र जी के भजने से ही दूर होता है ॥ १४६ ॥

खेलत बालक काल संग, मेलत पावक हाथ।
तुलसी सिसु पितु-मातु ज्यों राखत सिय रघुनाथ ॥ १४७ ॥

जैसे माता-पिता बच्चे को सर्प के साथ खेलने से, अग्नि में हाथ डालने से रक्षा करते हैं, वैसे ही सीता जी और श्रीरामचन्द्र जी जीव को संसारी कष्टों से रक्षा करते हैं अर्थात् माता पिता के समान श्रीसीताराम जीवों की रक्षा करते हैं ॥ १४७ ॥

तुलसी दिन भल साहु कहँ, भलो चोर कहँ राति।
निसि बासर ताकहँ भलो मानै राम-इताति ॥ १४८ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि साहु के लिये दिन भला और चोर के लिये रात पर दिन और रात उसके लिये भला है जो श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा को मानते हैं ॥ १४८ ॥

तुलसी जाने सुनि समुझि कृपासिन्धु रघुराज।
महँगे मनि कंचन किये, सौंधे जग, जल नाज ॥ १४९ ॥

तुलसीदास जी ने दयालु श्रीरामचन्द्र जी को (गुरु से) सुन कर और स्वयं समझ कर जाना। उन्होंने (सर्व जीवों की रक्षा के लिये तो) अन्न और जल सस्ता किया पर मणि और सोने को महँगा ॥ १४९ ॥

सेवा, सील, सनेह, बस करि, परिहरि प्रिय लोग।
तुलसी ते सब राम सों सुखद सुयोग बियोग ॥ १५० ॥

गोस्वामी जी कहते हैं कि माता पिता, भाई बन्धु स्त्री पुत्रादि प्रिय लोग सेवा, शील तथा स्नेह के वशवर्ती हैं, इन्हें त्याग कर श्रीरामचन्द्र जी की सेवा से सुख देने वाला अच्छा समय प्राप्त कर क्योंकि इन प्रिय लोगों का अन्त में वियोग हो जाता है, अर्थात् इनका संयोग स्थायी नहीं है।

अथवा प्रिय लोग सेवा, शील तथा स्नेह के वश कर फिर त्याग देते हैं अतः इससे वियोग का दुःख होता है किन्तु श्रीरामचन्द्र जी की सेवा से सुख देने वाला ही समय प्राप्त होता है इनमें कभी दुःख नहीं होता। अथवा श्रीरामचन्द्र जी की सेवा से प्रिय जनों के मिलन और बिछुड़ने दोनों में ही सुख प्राप्त होता है।

अथवा प्रिय लोगों (संसारी सम्बन्धियों से इस प्रकार का व्यवहार कर कि सेवा तथा शील और स्नेह का कार्य करते हुए भी उनसे मानसिक प्रेम त्याग दे और श्रीरामचन्द्र जी के शरणागत हो जा, इससे इन प्रिय जनों के मिलन से सुख और बिछुड़न से दुःख न होगा। दोनों अवस्था में ही सुख ही रहेगा ॥ १५० ॥

चारि चहत मानस अगम, चनक चारि को लाहु।
चारि परिहरें चारि को दानि चारि चख चाहु ॥ १५१ ॥

मन से अगम चारों (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) को चाहता है, पर मिलता चार चना ही है इन चारों को छोड़ कर उनको चारों नेत्रों से देख जो इन चारों को देने वाले हैं। अथवा वेद और शास्त्र बड़ी शान से चारों (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) को चाहते हैं, पर यदि तुम्हें वे चारों नहीं मालूम हैं तो उनके देने वाले श्रीरामचन्द्र जी को स्मरण करो ॥ १५१ ॥

सूधे मन, सूधे बचन, सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल विधि रघुबर-प्रेम-प्रसूति ॥ १५२ ॥

यदि मन निश्छल है, बचन निर्मल है, सब करनी भली है तो हे तुलसी ! श्रीरामचन्द्र जी में प्रेम उत्पन्न करने वाली सभी उपायें सरल हैं। क्योंकि भगवान् श्री मुख से कहते हैं—

निर्मल मन जन सो मोहिं पावा। मोहिं कपट छल छिद्र न भावा ॥ १५२ ॥

वेष विसद, बोलनि मधुर, मन कटु, करम मलीन।
तुलसी राम न पाइये भये विषय-जल-मीन ॥ १५३ ॥

वेश निर्मल है, बोली मधुर है, पर मन दुष्ट है, कर्म भी नीच है, इस तरह विषय रूपी जल की मछली होने से श्रीरामचन्द्र जी नहीं मिलते। भाव यह कि बगुला भगत बनने से श्रीरामचन्द्र जी की प्राप्ति नहीं होती ॥ १५३ ॥

बचन-वेष तें जो बनै सो बिगरै परिनाम।
तुलसी मन तें जो बनै बनी बनाई राम ॥ १५४ ॥

जो बात वेश से बनती है, उसका अन्तिम फल बुरा होता है। अर्थात् वेश बना कर तभी तक मनुष्य मान्य है जब तक भण्डा नहीं फूटता, भण्डा फूटते ही मारा जाता है तुलसीदास जी कहते हैं कि जो बात मन से बन जाती है, उसे श्रीरामचन्द्र जी भी बना देते हैं, अर्थात् शुद्धान्तःकरण वाले को भगवान् भी सुधारते हैं ॥ १५४ ॥

नीच मीचु लै जाइ जौ राम-रजायसु पाइ।
ता तुलसी तेरो भलो नतु अनभलो अघाइ ॥ १५५ ॥

यदि श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा पा कर मृत्यु नरक में भी ले जाय तो हे तुलसी! तेरा भला है अन्यथा तेरी हानि ही है। भाव यह कि श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा से यदि नरक में भी जाना पड़े तो श्रीरामनाम तो न भूलेगा। इसके विपरीत स्वर्ग में जाना पड़े तो भी कष्ट ही उठाना पड़ेगा क्योंकि बिना श्रीरामचन्द्र जी की कृपा से सुख कहीं नहीं मिलता ॥ १५५ ॥

जाति हीन, अघ-जनम महि, मुकुत कीनि असि नारि।
महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि ॥ १५६ ॥

श्रीरामचन्द्र जी ने नीच जाति की, संसार में पाप की खान ऐसी स्त्री (शबरी) को भी मुक्त किया। हे महा मूढ़ मन! ऐसे प्रभु को भुला कर सुख चाहता है ॥ १५६ ॥

बंधु-बधू-रत कहि कियो बचन निरुत्तर बालि।
तुलसी प्रभु सुग्रीव की चितइ न कछु कुचालि ॥ १५७ ॥

जिन्होंने, छोटे भाई की स्त्री में तू रत है यह कह के वालि को निरुतर किया, मारा, वही प्रभु सुग्रीव को बड़े भाई की स्त्री में रत देख उसके इस दुर्व्यहार पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। भाव यह कि श्रीरामचन्द्र जी भक्तों के अवगुण को नहीं देखते ॥ १५७ ॥

बालि बलि बलसालि दलि सखा कीन्ह कपिराज।
तुलसी राम कृपालु को बिरद गरीबनिवाज ॥ १५८ ॥

बलवानों में बली वालि को मार कर मित्र सुग्रीव को बानरों का राजा बनाया। दीनों की रक्षा करने वाले दयालु श्रीरामचन्द्र जी की यह ख्याती है ॥ १५८ ॥

कहा बिभीषन लै मिलो, कहा बिगार्यो बालि।
तुलसी प्रभु सरनागतहि, सब दिन आये पालि ॥ १५९ ॥

विभीषण ने क्या ले कर मिला था जो उसे लङ्का का राजा बनाया और वालि ने क्या बिगाड़ा था जो उसे मारा। तुलसी दास जी कहते हैं कि प्रभु श्रीरामचन्द्र जी का स्वभाव ही है कि सदा से शरण में आये हुए की रक्षा करते हैं ॥ १५९ ॥

तुलसी कोसलपाल सो, को सरनागतपाल।
भज्यो बिभीषन बंधु भय, भंज्यो दारिद-काल ॥ १६० ॥

तुलसीदास जी कहते हैं–कोशलपाल श्रीरामचन्द्र जी के समान शरणागतों की रक्षा करने वाला कौन है ? विभीषण अपने भाई रावण के भय से भाग कर श्रीराम जी की शरण में आया, उन्होंने उसकी दरिद्रता और मृत्यु दोनों को दूर कर दी ॥ १६० ॥

कुलिसहु चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि ।
चित खगेस अस रामकर, समुझि परै कहु काहि ॥ १६१ ॥

हे पक्षिराज गरुड ! जो (दुर्जनों के लिए) वज्र से भी कठिन हैं और (सन्तों के लिए) पुष्प से भी कोमल हैं ऐसे श्रीरामचन्द्र जी के चित्त को कहो कौन समझ सकता है ? ॥ १६१ ॥

बलकल भूषन, फल असन, तृन सज्या, द्रुम प्रीति ।
तिन्ह समयन लंका दई, यह रघुबर की रीति ॥ १६२ ॥

जिस समय छाल का वस्त्र धारण किये थे, फल खाते थे, घास पर सोते थे, वृक्षादिकों से कौटुम्बिक प्रेम था, उस समय में भी विभीषण को लङ्का दी, यह श्रीरामचन्द्र जी की रीति है अर्थात् अपदावस्था में रहने पर भी शरणागत को स्वर्णमय लङ्का पुरी दान दी ॥ १६२ ॥

जो संपति सिव रावनहिं दीन्हि दिये दस माथ ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ ॥ १६३ ॥

शिवजी ने दस सिर चढ़ाने पर जो सम्पत्ति रावण को दी वही सम्पति श्री रामचन्द्र जी ने संकोच सहित विभीषण को दी । संकोच इस बात का कि इसे कुछ नहीं दिया ऐसा दानी दूसरा कौन है, इतना बड़ा राज्य देने पर भी संकोच ॥ १६३ ॥

अबिचल राज बिभीषनहिं दीन्ह राम रघुराज ।
अजहुँ बिराजत लंक पर तुलसी सहित समाज ॥ १६४ ॥

रघुकुल के राजा श्रीरामचन्द्र जी ने विभीषण को अटल राज्य दिया, तुलसीदास जी कहते हैं कि आज भी लङ्का पर अपने समाज सहित अचल राज्य वे करते हैं ॥१६४॥

कहा विभीषन लै मिल्यो, कहा दियो रघुनाथ ।
तुलसी यह जाने बिना मूढ मीजिहैं हाथ ॥ १६५ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि विभीषण ने क्या ले कर मिला और श्रीरामचन्द्र जी ने क्या दिया यह बिना जाने मूर्ख जन हाथ मलते हैं । वाह्यरूप से देखने से

विभीषण खाली हाथ आया था, और श्रीरामचन्द्र जी ने उसे लङ्का का राज्य दिया, जहाँ पर वह एक प्रकार से राज्य करता ही था, अतः उसे कुछ नहीं मिला। पर आध्यात्मिक रूप से विभीषण राक्षस होने पर भी भगवान् का भक्त था और वह दैन्यभाव से शरण में आया था, भगवान् ने उसे लङ्का का राज्य दिया ही साथ ही अपना धाम भी दिया जो मूर्ख इस बात को नहीं जानते कि दैन्यत्व से प्रसन्न हो कर भगवान् अचल धाम देते हैं, वे हाथ मल पछताते ही रह जाते हैं ॥ १६५ ॥

बैरिबंधु निसिचर अधम, तज्यो न भरे कलंक।
झूठे अघ सिय परिहरि तुलसी साइँ ससंक ॥ १६६ ॥

शत्रु रावण का भाई, अधम राक्षस कलङ्क से भरे होने पर भी विभीषण को नहीं त्यागा, पर झूठा कलंक लगाने से लोक निन्दा के भय से सीता को त्याग दिया। भाव यह कि शरण में आये हुए नीच के लिए तो लोकनिन्दा से नहीं डरे, पर अपनी शक्ति सीता को त्यागने में लोक का भय किया। यह भगवान् की भक्तवत्सलता है ॥ १६६ ॥

तेहि समाज कियो कठिन पन जेहि तौल्यो कैलास।
तुलसी प्रभु महिमा कहौं, सेवक को विस्वास ॥ १६७ ॥

उस समाज में जिसने कैलास को उठा लिया, अर्थात् रावण की सभा में अङ्गद ने कठिन प्रण किया (कि यदि मेरा पैर कोई उठा दे तो श्रीरामचन्द्र जी लौट जायँ और मैं सीता हार जाऊँ) पर कोई पैर उठा नहीं सका। तुलसीदास कहते हैं कि यह प्रभु की महिमा और सेवक का विश्वास है ॥ १६७ ॥

सभा सभासद निरखि पट पकरि, उठायो हाथ।
तुलसी कियो इगारहों बसनवेष जदुनाथ ॥ १६८ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं, सभा में जब दुःशासन द्रौपदी का वस्त्र खींचने लगा, उसने सभासदों को चुप देख हाथ उठा अंचल पकड़ टेरा, भगवान् तब यदुनाथ श्रीकृष्णचन्द्र ने वस्त्र का वेशधर ग्यारहवाँ अवतार लिया ॥ १६८ ॥

त्राहि तीन कह्यो द्रौपदी तुलसी राजसमाज।
प्रथम बढ़े पट, बिय बिकल, चहत चकित निज काज ॥ १६९ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि (जब दुःशासन द्रौपदी का चीर खींच उसे नग्न करने लगा तब) राज समाज में द्रौपदी ने तीन वार त्राहि कहा, पहली वार कहने पर वस्त्र बढ़ा, दूसरी वार भगवान् विकल हो उठे कि अब क्या करें और तीसरी वार चकित होकर

अपना काम करना चाहा, दुष्टों का संहार करना चाहा। चकित इसलिए हुए कि अभी दुष्टों के संहार का समय आ गया॥ १६९॥

सुख जीवन सब कोउ चहत, सुख जीवन हरिहाथ।
तुलसी दाता माँगनेउ देखियत अबुध अनाथ॥ १७०॥

संसार में सब कोई सुख मय जीवन विताना चाहते हैं पर सुख मय जीवन बीताना भगवान् के हाथ है। तुलसीदास कहते हैं कि संसार में दो तरह के जीव हैं एक दाता, दूसरा मँगता, पर दोनों मूढ और अनाथ हैं। दाता इसलिए मूर्ख है कि वह परमात्मा को भूल कर मिथ्याभिमान करता है, मँगता इसलिए मूर्ख है कि वह महादानी परमात्मा को भूल कर प्राकृतिक आदमियों से माँगता है॥ १७०॥

कृपिन देइ, पाइय परो, बिनु साधे सिधि होइ।
सीतापति सनमुख समुझि जो कीजै सुभ सोइ॥ १७१॥

कृपिण दे, पड़ा मिले, बिना साधे ही सिद्धि हो यही क्या श्रीरामचन्द्र जी को सम्मुख जान जो करे वही भला हो॥ १७१॥

दंडकवन-पावन-करन चरन-सरोज प्रभाउ।
उसर जामहि, खल तरहि, होइ रंक ते राउ॥ १७२॥

दण्डक वन को पवित्र* करने वाले श्रीरामचन्द्र जी के चरण कमलों में वह प्रभाव है कि ऊसर भूमि उपजाऊँ हो जाय, पापी मुक्त हों और दरिद्र से राजा हो जाय॥ १७२॥

बिन ही ऋतु तरुवर फरत, सिला द्रवति जलजोर।
राम लषन सिय करि कृपा जब चितवत जेहि ओर॥ १७३॥

श्रीरामचन्द्र जी, लक्ष्मण जी और जानकी जी जब जिस ओर कृपा कर देखते हैं तभी असमय में ही वृक्ष फलने लगते हैं पहाड़ों से जोर से जल बहने लगते हैं॥ १७३॥

सिला सुतिय भइ, गिरि तरे, मृतक जिये जग जान।
राम-अनुग्रह सगुन सुभ, सुलभ सकल कल्यान॥ १७४॥

---

* इक्ष्वाकु वंशी दण्ड नाम का एक राजा था। इसने अपने गुरु शुक्राचार्य की कन्या अरजा के साथ जबरदस्ती संभोग किया। शुक्राचार्य ने दण्ड का यह वीभत्सकर्म सुन कर उसको राज्य सहित भस्म होने का शाप दिया। इसी शाप से उसका राज्य भस्म होकर पशु पक्षी हीन हो गया। जब श्रीरामचन्द्र जी ने उस वन में पदार्पण किया तब वह वन फिर लहलहा उठा।

श्रीरामचन्द्र जी की कृपा से शुभ और सगुन सब कल्याण सुलभ होते हैं, जिनकी कृपा से शिला स्त्री हुई, पत्थर समुद्र में तैरे। मृतक जी उठे। यथा—सुधा वृष्टि भइ दुहुँ दल ऊपर जिये भालु कपि नहीं रजनिचर ॥ १७४ ॥

सिलासाप-मोचन चरन सुमिरहु तुलसीदास।
तजहु सोच, संकट मिटिहिं, पूजिहि मन की आस ॥ १७५ ॥

ऐ तुलसीदास! शिला (अहल्या) को पाप से छुड़ाने वाले चरणों को स्मरण करो, सब सोच को दूर कर सारे कष्ट नष्ट हो जायँगे और मन की आशा पूर्ण होगी ॥ १७५ ॥

मुये जिआये भालु कपि, अवध विप्र को पूत।
सुमिरहु तुलसी ताहि तू जाको मारुति दूत ॥ १७६ ॥

ऐ तुलसीदास! तू उसको स्मरण कर जिसने मरे भालु वानरों को तथा अयोध्या के ब्राह्मण के लड़के को जिलाया* और जिसके दूत हनुमान हैं, अर्थात् श्रीरामचन्द्रजी को भज ॥ १७६ ॥

काल करम गुन दोष जग जीव तिहारे हाथ।
तुलसी रघुबर रावरो, जान जानकीनाथ ॥ १७७ ॥

हे रघुवर! जीव के गुण दोष, काल कर्म सब तुम्हारे ही हाथ है, हे जानकीनाथ! यह बात भी समझ रखिये कि तुलसी आप ही का है, अतः अन्य जीवों की तरह भूल न जाइयेगा ॥ १७७ ॥

रोगनिकर तनु, जरठपनु, तुलसी संग कुलोग।
राम कृपा लै पालिये, दीन पालिबे जोग ॥ १७८ ॥

---

* श्रीरामचन्द्र जी के शासन काल में एक ब्राह्मण का लड़का असमय मर गया। वह ब्राह्मण मृत पुत्र के शव को लिए हुए विलाप करते श्रीरामचन्द्र जी की ड्योढ़ी पर आया। वह कहने लगा हे रामचन्द्र! तुम्हारे ही पाप से मेरा पुत्र असमय में मरा है। मेरे पुत्र को तुम जिला दो नहीं तो मैं प्राण दे दूँगा। जब श्रीरामचन्द्र जी ने इस बात का पता लगाया कि ब्राह्मण का लड़का क्यों मरा तो मालूम हुआ कि एक शूद्र नीचा सिर कर के तपस्या कर रहा है। इसी पाप से ब्राह्मण पुत्र मारा है। श्रीरामचन्द्रजी ने जा कर उस शूद्र का सिर तलवार से काट डाला। वह शूद्र राजदण्ड पाकर मुक्त हो गया और ब्राह्मण का पुत्र भी जी गया।

शरीर रोग का समूह हो गया है अर्थात् शरीर अनेक प्रकार के रोगों से भरा है, वृद्धावस्था है और बुरे लोगों का भी साथ है ; हे कृपालु श्रीरामचन्द्र जी ! ऐसे तुलसी की रक्षा कीजिए क्योंकि यह दीन पालने योग्य है ॥ १७८ ॥

मो सम दीन न, दीनहित तुम समान रघुबीर ।
अस बिचारि रघुबंसमनि हरहु बिषम भवभीर ॥ १७९ ॥

हे रघुवीर ! मेरे समान कोई दूसरा दीन नहीं है और तुम्हारे समान दीनहितैषी भी दूसरा नहीं । यह विचार कर हे रघुवंशमणि ! (रघुकुल में श्रेष्ठ) मेरे कठिन क्लेश को दूर कीजिए ॥ १७९ ॥

भवभुवंग तुलसी नकुल, डसत ज्ञान हरि लेत ।
चित्रकूट इक औषधि, चितवत होत सचेत ॥ १८० ॥

संसार रूपी सर्प डसते ही ज्ञान हर लेता है, पर नकुल रूपी तुलसीदास चित्रकूट रूपी औषधि को देखते ही सचेत हो जाते हैं । भाव यह कि संसारी वाधाओं से व्यथित हो तुलसीदास चित्रकूट पर चले जाते हैं और यहाँ उन्हें तुरन्त शान्ति मिल जाती है ॥ १८० ॥

हौंहुँ कहावत, सब कहत, राम सहत उपहास ।
साहब सीतानाथ से, सेवक तुलसीदास ॥ १८१ ॥

मैं भी श्रीरामचन्द्र जी का सेवक कहलाता हूँ और सब लोग मुझे (रामदास) कहते हैं। यह श्रीरामचन्द्र जी उपहास ही सहते हैं । श्रीरामचन्द्र जी के समान स्वामी और मुझ जैसा सेवक । भाव यह कि मैं तो राम नाम पेट भरने के लिये लेता हूँ । लोग मुझे राग का भक्त ही समझते हैं, इसमें तो श्रीरामचन्द्र जी के बदनामी के और क्या है ॥ १८१ ॥

रामराज राजत सकल धरम-निरत नर-नारि ।
राग न रोष न दोष दुख, सुलभ पदारथ चारि ॥ १८२ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के राज्य में सभी स्त्री पुरुष धर्म में संलग्न (लगे हुए) शोभायमान थे । अर्थात् सभी धर्मात्मा थे । न राग था, न क्रोध, न दोष और न दुःख तथा चारों पदार्थ अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष सुलभ थे ॥ १८२ ॥

राम राज संतोष सुख, घर बन सकल सुपास।
तरु सुरतरु, सुरधेनु महि, अभिमत भोग विलास॥ १८३॥

श्रीरामचन्द्र जी के राज्य में सन्तोष था, सुख था, घर वन सभी स्थान में सब प्रकार के सुभीता था, वृक्षों में सदा कल्पवृक्ष के समान फल फूल लगे रहते थे, पृथ्वी कामधेनु की तरह इच्छित फल देती थी और मनचाहा भोग विलास सरलता से मिलता था॥ १८३॥

खेती, बनि, विद्या, बनिज, सेवा, सिलिपि सुकाज।
तुलसी सुरतरु सरिस सब सुफल राम के राज॥ १८४॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र जी के राज्य में कृषि, मजूरी, विद्या व्यापार, सेवा, शिल्प आदि उतम कार्य कल्प वृक्ष के समान फल देने वाले थे॥ १८४॥

दंड जतिन कर, भेद जहँ नरतक नृत्य समाज।
जीतहु मनहिं सुनिय अस, रामचन्द्र के राज॥ १८५॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि सुनता हूँ कि श्रीरामचन्द्र जी के राज्य में दण्ड संन्यासियों के ही हाथ में था अर्थात् न तो कोई अपराध करता था न किसी को दण्ड दिया जाता था। भेद नाचने ही वालों के समाज में था अर्थात् न कहीं झगड़ा होता था न भेद करने की आवश्यकता थी और सब मन को ही जीते थे, न कोई शत्रु था न जितना पड़ता था॥ १८५॥

कोपे सोच न पोच कर, करिय निहोरन काज।
तुलसी परमिति प्रीति की रीत राम के राज॥ १८६॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि छोटों के क्रुद्ध होने पर कोई अप्रसन्न चित्त न होता था, अर्थात् सभी सहन शील होते थे, कोई काम निहोरा से नहीं होता था, परस्पर बिना स्वार्थ सिद्धि के ही एक दूसरे का काम करा लेते थे, श्रीरामचन्द्र जी के राज्य में प्रेम की यही रीति थी॥ १८६॥

मुकुर निरखि मुख रामभ्रू, गनत गुनहिं दै दोष।
तुलसी से सठ सेवकनि लखि जनि परहि सरोष॥ १८७॥

आईने में मुँह देख कर लोग श्रीरामचन्द्र जी की भौंह का स्मरण करके कहते हैं कि वह हानि करने वाली है, पर तुलसीदास जी कहते हैं कि मुझसे दुष्ट सेवक को

तो वह कभी क्रोध युक्त जान ही न पड़ी। अर्थात् जो राम के सेवक नहीं हैं उनको श्रीरामचन्द्र जी की टेढ़ी भौंह दुःखदायी जान पड़ती है, पर श्रीरामचन्द्र जी के बुरे सेवक को भी वह अच्छी जान पड़ती है, फिर भले सेवकों का कहना ही क्या? अथवा श्रीरामचन्द्र जी शीशे में अपना मुँह देख अपनी टेढी भौंह को दोष युक्त ठहराया, इस पर तुलसीदास जी ने कहा मुझे तो यह क्रोध युक्त जान ही नहीं पड़ती ॥ १८७ ॥

सहसनाम मुनि-भनित सुनि, तुलसी-वल्लभ नाम।
सकुचत हिय हँसि निरखि सिय धरमधुरंधर राम ॥ १८८ ॥

व्यास मुनि रचित सहस्र नाम में अपना एक नाम तुलसी वल्लभ सुन सीता की ओर देख धरम धुरंधर श्रीराम हृदय में सकुच कर हँसते हैं। भाव यह कि श्रीरामचन्द्र जी धर्म की धूरी को धारण करने वाले हैं, पर सीता तुलसी वल्लभ नाम सुन कर क्या समझेंगी कि श्रीराम के एक पत्नी और है इसी लिए सकुचाते हैं ॥ १८८ ॥

गौतम-तिय-गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि।
हिय हरषे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि ॥ १८९ ॥

गौतम की स्त्री अहल्या की दशा को याद कर सीता जी श्रीराम जी के चरणों को नहीं छूती हैं, क्योंकि पत्थर के स्पर्श होने पर अहल्या स्त्री हो गयी, मेरे हाथों में कितने ही पत्थर के गहने हैं, चरण स्पर्श से कहीं वे भी स्त्रियाँ हो गयीं और कहीं श्रीराम का प्रेम उन्हीं में लग गया तो मुझे वियोग दुःख सहना पड़ेगा। सीता की इस अलौकिक प्रेम को जान श्रीरामचन्द्र जी हृदय में प्रसन्न हुए ॥ १८९ ॥

तुलसी बिलसत नखत निसि सरद-सुधाकर साथ।
मुकुता झालर झलक जनु राम सुजस-सिसु हाथ ॥ १९० ॥

तुलसीदास जी कहते हैं—रात्रि में शरद् ऋतु के चन्द्रमा के साथ नक्षत्र गण चमकते हैं वह मानों श्रीरामचन्द्र जी के सुयश रूपी बालक के हाथ में मोतियों की झालर चमकती हो ॥ १९० ॥

रघुपत कीरति-कामिनि क्यों कहै तुलसीदासु।
सरद-अकास प्रकास ससि चारु चिबुक-तिल जासु ॥ १९१ ॥

श्रीरामचन्द्र जी की कीर्ति रूपी कामिनी का बखान तुलसीदास कैसे कर सकते हैं, क्योंकि शरद् ऋतु के चन्द्रमा के प्रकाश में जो आकाश दिखाई पड़ता है वह मानों उस कामिनी के होंठ का तिल है, भाव यह कि इतना विस्तृत आकाश श्रीरामचन्द्र जी की

कीर्ति रूपी स्त्री के होंठ का तिल है, तो उस कीर्ति का बखान कैसे हो सकता है ॥ १९१ ॥

प्रभु गुन गन भूषन बसन, बिसद बिसेष सुदेस ।
राम-सुकीरति-कामिनी तुलसी करतब केस ॥ १९२ ॥

श्रीरामचन्द्र जी की कीर्ति रूपी कामिनी के गुणों का समूह वस्त्राभूषण हैं जो बड़े स्वच्छ तथा मूल्यवान हैं और जिस स्थान पर जो चाहिए वह उसी स्थान पर है, तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र जी के कार्य कीर्ति रूपी कामिनि के केश हैं, तात्पर्य यह कि जैसे बाल बढ़ते जाते हैं और पीछे पड़ते जाते हैं, वैसे ही श्रीरामचन्द्र जी अनेक कामों को करते उन्हें पीछे छोड़ते आगे बढ़ते जाते हैं। अथवा श्रीरामचन्द्र जी की कीर्ति कामिनी का सभी कुछ स्वच्छ तथा विस्तृत है, पर तुलसीदास जी की कालि कविता उसके केश हैं क्या तुलसी की कविता प्रभु के निर्मल यशोराशि के समान उज्ज्वल हो सकती है, इसका सँभाल तो प्रभु के हाथ में है। जब चाहेंगे वे ही उसे सँभाले लेंगे। बढ़ते हुए बालों के समान उसकी बढ़ती ही होगी वह घट नहीं सकती ॥ १९२ ॥

रामचरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु ।
सज्जन कुमुद-चकोर चित, हित बिसेष बड़ लाहु ॥ १९३ ॥

श्रीरामचन्द्र जी का चरित्र चन्द्रमा की किरण के समान सब को सुख देने वाला है और सज्जन रूपी कुमुद और चकोर के चित्त के लिए हितैषी तथा विशेष लाभदायक है ॥ १९३ ॥

रघुबर कीरति सज्जननि सीतल, खलनि सुताति ।
ज्यों चकोर-चय चक्कवनि तुलसी चाँदनि राति ॥ १९४ ॥

श्रीरामचन्द्र जी की कीर्ति सज्जनों के लिए शीतल, सुख देने वाली तथा दुर्जनों के लिए गर्म, दुख देने वाली है जैसे चाँदनि रात चकोरों को आनन्द देती है और चकवा को दुःख ॥ १९४ ॥

रामकथा मंदाकिनि, चित्रकूट चित चारु ।
तुलसी सुभग सनेह बन, सिय-रघुबीर-विहारु ॥ १९५ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीरामकथा मंदाकिनी नदी है, सज्जनों का चित्त चित्रकूट है और भाग्यवानों का स्नेह वन है जहाँ सीताराम विहार करते हैं ॥ १९५ ॥

स्याम-सुरभि-पय बिसद अति, गुनद करहिं तेहि पान ।
गिरा ग्राम्य सियराम जस गावहिं सुनहिं सुजान ॥ १६६ ॥

श्यामा गौ का दूध, जो अत्यन्त स्वच्छ और गुणदायक होता है उसका सभी पान करते हैं वैसे ही ग्राम्य भाषा में ही श्रीसीताराम के यश को सज्जन गाते और सुनते हैं। भाव यह कि गाय श्यामा होने पर भी उसका दूध स्वच्छ और गुणदायक होता है, वैसे ही मेरी कविता गँवारू बोली में होने पर भी उसमें श्रीरामसीता का यश वर्णन होने से चतुर लोग उसे पढ़ते और सुनते हैं ॥ १९६ ॥

हरि-हर-जस सुरनर-गिरहु बरनहिं सुकबि-समाज ।
हाँड़ी हाटक घटित चरु राँधे स्वाद सुनाज ॥ १६७ ॥

अच्छे कवियों की मण्डली में विष्णु और शिव का यश संस्कृत और भाषा दोनों में ही वर्णन होता है, वह चाहे भाषा में हो या संस्कृत में वह उत्तम होता है। जैसे सोने या मिट्टी के वर्तन में पकाया हुआ उत्तम अनाज स्वादिष्ट ही होता है। भाव यह कि भगवान् का यश जिस भाषा में हो वह कल्याणकारी ही है ॥ १९७ ॥

तिल पर राखेउ सकल जग, बिदित, बिलोकत लोग ।
तुलसी महिमा राम की कौन जानिबे जोग ॥ १६८ ॥

तिल पर सारे संसार को रखे हुए हैं यह लोग आँख की तिल से देख कर जानते ही है, तुलसीदास जी कहते हैं कि भगवान् की महिमा को कौन जान सकता है।

विज्ञान द्वारा यह बात सिद्ध है, जो काला तिल आँख में दिखाई देता है वह शीशे के आकार का बना है। उसी के द्वारा गया हुआ प्रकाश एक बहुत ही सूक्ष्म स्थान पर पड़ कर वाह्य जगत् के स्वरूप को चित्र की भाँति खींच देता है और नाडियों के द्वारा उसका ज्ञान मस्तिष्क को हो जाता है। इसी तिल के द्वारा प्रत्येक चक्षुधारी इस विस्तृत जगत् का अवलोकन करता है। इस दोहे का आध्यात्मिक भाव यह है कि "यः एषः पुरुषोऽक्षिण प्रकाशते एष आत्मा" अर्थात् यह काला तिल ईश्वर है। तुलसीदास जी ने भी रामचरित मानस में लिखा है—"ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै।" सांख्य शास्त्र से भी यही बात सिद्ध है कि प्रत्येक ब्रह्माण्ड एक हिरण्मय अण्डकोश रूपी महत् तत्व के भीतर है। महत् तत्व परब्रह्म परमेश्वर की बुद्धि है। यदि करोड़ों ब्रह्माणों का ईश्वर की बुद्धि में स्थित होना सिद्ध है तो तिल पर जगत् का होना सिद्ध ही है ॥ १९८ ॥

सोरठा

राम स्वरूप तुम्हार वचन अगोचर बुद्धिपर।
अविगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह ॥ १९९ ॥

हे राम! तुम्हारा स्वरूप बाणि और बुद्धि से परे है किसीसे जानने योग्य नहीं है, कहने योग्य नहीं है, सीमा रहित है और वेद शास्त्र सदा नेति, इति नहीं है ऐसा कहते हैं ॥ १९९ ॥

दोहा

मायाजीव, सुभाव, गुन, काल करम, महदादि।
ईस-अंक ते बढ़त सब ईस अंक बिनु बादि ॥ २०० ॥

माया जीव, स्वाभाव, गुण काल कर्म, महदादि ये सब ईश्वर के रहने से वैसे ही बढ़ते हैं जैसे अंक के रहने से शून्य बढ़ता है पर अंक न रहने पर शून्य का कुछ महत्व नहीं रहता वैसे ही ईश्वर के न रहने पर माया जीव आदि व्यर्थ हैं ॥ २०० ॥

हित उदास रघुबर बिरह, बिकल सकल नर-नारि।
भरत लषन सिय गति समुझि प्रभु-चख सदा सुबारि ॥ २०१ ॥

अपने वियोग से व्याकुल सभी स्त्री पुरुष के लिये श्रीरामचन्द्र जी उदास रहते हैं, तथा भरत, लक्ष्मण और सीता की दशा स्मरण करके सदा प्रभु श्रीरामचन्द्र जी के नेत्रों में जल भरा रहता है ॥ २०१ ॥

सीय, सुमित्रासुवन-गति, भरत सनेह सुभाउ।
कहिबे को सारद सरस, जनिबे को रघुराउ ॥ २०२ ॥

सीता और सुमित्रानन्दन लक्ष्मण जी की गति तथा भरत के स्नेह और स्वभाव कहने के लिये सरस्वती के समान हो और जानने के लिये श्रीरामचन्द्र के ॥ २०२ ॥

जाने राम न कहि सके भरत लषन सिय प्रीति।
सो सुनि गुनि तुलसी कहत, हठ सठता की रीति ॥ २०३ ॥

भरत, लक्ष्मण और सीता के प्रेम को श्रीराम जानते हैं पर कह नहीं सकते, वही तुलसीदास अपनी मूर्खता के हठ वश कहना चाहते हैं ॥ २०३ ॥

सब बिधि समरथ सकल कह, सहि साँसति दिन राति।
भलो निबाहेउ सुनि समुझि स्वामि धर्म सब भाँति ॥ २०४ ॥

सब कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र जी सब प्रकार से समर्थ हैं पर दिन रात स्वयं कष्ट उठा उठा कर स्वामि धर्म को सब प्रकार से निवाहते हैं। भाव यह कि समर्थ होते हुए भी सेवकों के लिए स्वयं कष्ट उठाते हैं, धन्य है प्रभु की भक्तवत्सलता ॥ २०४ ॥

भरतहि होइ न राजमद बिधि-हरि-हर-पद पाइ।
कबहुँक काँजि सीकरनि छीर सिंधु बिनसाइ ॥ २०५ ॥

ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश का पद पा कर भी भरत को राज मद नहीं हो सकता। क्या क्षीर समुद्र छाँछ की बूंद से बिगड़ सकता है ॥ २०५ ॥

संपति चकई, भरत चक, मुनि आयसु खिलवार।
तेहि निसि आस्रम-पिंजरा राखे भा भिनुसार ॥ २०६ ॥

सम्पत्ति तो चकई है, भरत चकवा हैं और भरद्वाज मुनि की आज्ञा खेल है, उस रात (जिस रात भरत जी ने भरद्वाज मुनि का श्रीरामचन्द्र जी को लौटाने जाते समय आतिथ्य ग्रहण किया था) आश्रम रूपी पिँजड़ा में रात भर रहते सवेरा हुआ। भाव यह कि जैसे चकवा चकई रात्रि में एक साथ नहीं रहते और कोई उन्हें पिँजड़े में बन्द रखे भी तो आपस में नहीं मिलते, उसी प्रकार मुनि की आज्ञा से ऐश्वर्यादि भोग्य वस्तुओं के बीच रहते हुए भरत जी उससे विमुख रहे। धन्य है भरत की भक्ति २०६ ॥

सधन चोर मग मुदित मन धनि गही ज्यों फेंट।
त्यों सुग्रीव बिभीषनहि भई भरत की भेंट ॥ २०७ ॥

जिस प्रकार कोई चोर माल लिये भागा जाता हो और वह माल वाले को रास्ते में मिल जाय तो माला वाला प्रसन्न हो कर उस का फेंट पकड़ लेता है। उसी प्रकार सुग्रीव और विभीषण की भरत से भेट हुई। भाव यह कि श्रीराम का प्रेम रूपी खजाना भरत ने उठा लिया था, जिसे विभीषण और सुग्रीव ढूँढ़ रहे थे, लंका विजय के बाद अयोध्या में आने पर भरत जी मिले मानो प्रेम का खजाना विभीषण और सुग्रीव को मिल गया ॥ २०७ ॥

राम सराहे, भरत उठि मिले राम सम जानि।
तदपि बिभीषन कीसपति, तुलसी, गरत गलानि ॥ २०८ ॥

श्रीरामचन्द्र जी ने सुग्रीव और विभीषण की भरत से प्रशंसा की, भरत जी उठ उन्हें श्रीरामचन्द्र के समान समझ कर उनसे मिले, तुलसीदास जी कहते हैं कि फिर भी सुग्रीव और विभीषण ग्लानि से लगते हैं। ग्लानि इस बात की कि हम लोग किस

योग्य हैं कि प्रभु हम लोगों की प्रशंसा उस व्यक्ति से करते हैं, जो प्रभुप्रेम के भाण्डार हैं ॥ २०८ ॥

भरत स्यामतन रामसम, सब गुन रूप-निधान।
सेवक-सुखदायक सुलभ सुमिरत सब कल्यान ॥ २०६ ॥

भरत जी श्रीरामचन्द्र जी के समान श्याम हैं, सब गुण और रूप के भाण्डार हैं, सेवकों को सुख देने वाले हैं और उनको स्मरण करने से सब कल्याण सुगम हो जाते हैं ॥ २०९ ॥

ललित लषन मूरति मधुर सुमिरहु सहित सनेह।
सुख संपति कीरति विजय सगुन सुमंगल गेह ॥ २१० ॥

श्रीलक्ष्मण जी की मूर्त्ति ललित तथा मधुर है, उनका स्नेह सहित स्मरण करो क्योंकि सुख, सम्पत्ति, कीर्ति, विजय, सगुन, मंगल के वे धाम हैं, अर्थात् लक्ष्मण जी के स्मरण से सर्व सुख की प्राप्ति होती है ॥ २१० ॥

नाम सत्रुसूदन सुभग, सुखमा सील-निकेत।
सेवत सुमिरत सुलभ सुख, सकल सुमंगल देत ॥ २११ ॥

शत्रुघ्न यह नाम सुन्दर है, सौभाग्य और शील का धाम है, इसकी सेवा से सुख सरलता से मिलता है और स्मरण से सब आनन्द मंगल प्राप्त होते हैं ॥ २११ ॥

कौसल्या कल्यानमयि मूरति करत प्रनाम।
सगुन सुमंगल काज सुभ कृपा करहिं सियराम ॥ २१२ ॥

कौशिल्या जी कल्याण की मूर्ति हैं, उन्हें प्रणाम करने से शुभ सगुन और मंगल तथा सब शुभ कार्य होते हैं तथा श्रीसीताराम कृपा करते हैं ॥ २१२ ॥

सुमिरि सुमित्रा नाम जग जे तिय लेहिं सनेम।
सुवन लषन रिपुदवन से, पावहिं पति-पद-प्रेम ॥ २१३ ॥

संसार में जो स्त्री प्रेम से सुमित्रा का स्मरण करती है, वह लक्ष्मण और शत्रुघ्न के समान पुत्र पाती है और पति के चरणों में उसका प्रेम होता है ॥ २१३ ॥

सीता-चरन प्रनाम करि सुमिरि सुनाम सनेम।
होहि तीय पतिदेवता, प्राननाथ प्रिय प्रेम ॥ २१४ ।

सीता जी के चरणों में प्रणाम कर प्रेम सहित श्रीराम का नाम स्मरण करने से स्त्रियाँ पतिव्रता होती हैं और अपने पति के प्यारी होती हैं ॥ २१४ ॥

तुलसी केवल कामतरु रामचरित-आराम।
कलितरु कपि निसिचर कहत हमहि किये बिधिबाम ॥ २१५ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र जी का चरित्र कल्पवृक्ष के समान सब सुखों का देने वाला है, पर बानर और राक्षस कहते हैं कि विधना हम लोगों के ही विपरीत है कि उस कल्पवृक्ष से अलग कर कलि के वृक्ष तर ही रखा। भाव यह कि श्रीरामचन्द्र जी के चरणों की सेवा हम लोग न कर सके, विधना ने हमारे कर्म में यह नहीं लिखा इस लिये चरणों से अलग होना पड़ा ॥ २१५ ॥

मातु सकल, सानुज भरत, गुरु पुर लोग सुभाउ।
देखत देख न कैकइहि लंकापति कपिराउ ॥ २१६ ॥

श्रीरामचन्द्र जी का स्वभाव माता, भाई, भरत, गुरु, नगर निवासियों ने दर्शाया, पर कैकेयी, रावण और वालि को न देख पड़ा। अर्थात् श्रीराम के प्रेम से सभी मुग्ध थे, यह देख कर भी, कैकेई, रावण और वालि को न सूझ पड़ा, कैकेई ने बन दिया, वालि ने युद्ध किया, रावण ने सीता हरी ॥ २१६ ॥

सरल सहज रघुबर बचन, कुमति कुटिल करि जान।
चलै जोंक जिमि बक्रगति यद्यपि सलिल समान ॥ २१७ ॥

श्रीरामचन्द जी के स्वाभाविक सरल वचन को कैकेयी ने कुटिल ही समझा, जैसे जल समान होने पर भी जोंक टेढ़ा ही चलती है ॥ २१७ ॥

दसरथ नाम सुकाम तरु फलइ सकल कल्यान।
धरनि, धाम, धन, धरम सुत, सदगुन रूपनिधान ॥ २१८ ॥

दशरथ यह नाम कल्पवृक्ष है, यह सब कल्याण फल को फलता है, अर्थात् दशरथ का नाम स्मरण करने से, पृथ्वी, घर, धन तथा सब गुण, रूप सम्पन्न धर्मात्मा पुत्र प्राप्त होता है ॥ २१८ ॥

तुलसी जान्यो दसरथहि धरमु न सत्य समान।
रामु तजे जेहि लागि, बिनु राम परिहरे प्रान ॥ २१९ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि दशरथ जी ने यह निश्चय किया कि सत्य के समान दूसरा धर्म नहीं है, जिसके लिये उन्होंने श्रीराम को त्याग दिया, पर श्रीराम के विरह

में उन्होंने अपना प्राण भी त्याग दिया। भाव यह कि सत्य से भी बढ़ कर श्रीराम की महत्ता है ॥ २१९ ॥

राम बिरह दसरथ-मरन, मुनि मन अगम सु मीचु ।
तुलसी मंगल-मरन-तरु, सुचि सनेह-जल सीचु ॥ २२० ॥

श्रीरामचन्द्र जी के विरह में महाराज दशरथ का ऐसा उत्तम मरण हुआ कि वह मुनियों के मन से परे है। अर्थात् श्रीराम के वियोग में मृत्यु पाना बड़े पुण्य का फल है। हे तुलसी! यदि तुम सुन्दर मृत्यु चाहते हो तो श्रीरामचन्द्र जी के स्नेह रूपी जल से मृत्यु रूपी वृक्ष को सींच। अर्थात् श्रीराम के प्रेम में ही मर ॥ २२० ॥

सोरठा

जीवन मरन सुनाम जैसे दसरथ राय को ।
जियत खिलाये राम, राम बिरह तनु परिहरेउ ॥ २२१ ॥

जीने और मरने में जैसी ख्याति महाराज दशरथ की हुई वैसी किसकी न हुई? क्योंकि जीवन काल में तो परब्रह्म श्रीराम जैसे पुत्र को खेलाये और श्रीराम वियोग में प्राण छोड़ दिये ॥ २२१ ॥

दोहा

प्रभुहि बिलोकत गोदगत-सिय-हित घायल नीच ।
तुलसी पाई गीधपति मुकुति मनोहर मीच ॥ २२२ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि गीधराज जटायु ने कैसी सुन्दर मृत्यु पायी कि नीच होने पर भी सीता की रक्षा के लिये घायल हुआ और प्रभु श्रीरामचन्द्र जी की गोदी में बैठ उनके मुखारविन्द को देखते हुए मरा ॥ २२२ ॥

बिरत, कामरत, भगत, मुनि, सिद्ध, ऊँच अरु नीचु ।
तुलसी सकल सिहात सुनि गीधराज की मीचु ॥ २२३ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि वैरागी, गृहस्थ, भक्त, मुनि, सिद्ध, ऊँच और नीच सभी गीधराज जटायु की मृत्यु सुन कर सिहाते हैं ॥ २२३ ॥

मुये, मरत, मरिहैं सकल घरी पहर के बीच ।
लही न काहू आजु लौं गीधराज की मीच ॥ २२४ ॥

घरी पहर के बीच में ही मर गये, मरते हैं और मरेंगे पर गीधराज की मौत के समान किसी ने भी मौत न पायी ॥ २२४ ॥

मुये मुकुत, जीवत मुकुत, मुकुत मुकुत हूँ बीच ।
तुलसी सबही ते अधिक गीधराज की मीच ॥ २२५ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि सब से बढ़ कर गीधराज की मृत्यु हुई चाहें कोई मरे पर मुक्त हो या जीते ही मुक्त हो जाय पर ऐसा मुक्त होने वाले और गीधराज के मुक्त होने में भेद है। भाव यह कि गीधराज परोपकार में परब्रह्म के सामने वैकुण्ठ धाम को गये ॥ २२५ ॥

तुलसी बिकल बिहंग लखि, सो बिलोकि दोउ बीर ।
सिय सुधि कहि, सियराम कहि देह तजी मतिधीर ॥ २२६ ॥

श्रीरामचन्द्र जी ने गीधराज को (बाणव्यथा से) व्याकुल देखा, उसने भी दोनों भाई राम लक्ष्मण से सीता का सम्वाद कह और सीताराम कह कर उस धीर बुद्धि ने प्राण त्यागा ॥ २२६ ॥

दसरथ ते दस गुन भगति सहित तासु कर काजु ।
सोचत बंधु समेत प्रभु, कृपासिंधु रघुराजु ॥ २२७ ॥

दशरथ से भी दस गुणा अधिक गीध की क्रिया कर दयासागर रघुराज श्रीरामचन्द्र जी भाई लक्ष्मण सहित सोचते हैं कि अब और गीध के लिये क्या करूँ ॥२२७॥

केवट निसिचर बिहग मृग किये साधु सनमानि ।
तुलसी रघुबर की कृपा सकल सुमंगलखानि ॥ २२८ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र जी की कृपा सब आनन्द मंगलों की खानि है, जिस कृपा से, मल्लाह, राक्षस विभीषण, पक्षी जटायु, पशु, सुग्रीव हनुमान आदि को सज्जनों से भी बढ़ कर बना दिया ॥ २२८ ॥

मंजुल मंगल मोदमय मूरति मारुतपूत ।
सकल सिद्धि कर-कमल-तल सुमिरत रघुबर-दूत ॥ २२९ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के दूत पवनतनय हनुमान की मूर्त्ति सुन्दर आनन्द मंगलमय है, जिसके स्मरण से सारी सिद्धियाँ कर कमलों ही में रहती हैं। अर्थात् हनुमान जी के स्मरण से सारे कार्य अनायास सिद्ध हो जाते हैं ॥ २२९ ॥

धीर, बीर, रघुबीर-प्रिय, सुमिरि समीरकुमार ।
अगम सुगम सब काज कर, करतल सिद्धि बिचार ॥ २३० ॥

धीर वीर श्रीरामचन्द्र जी के प्रिय पवनकुमार हनुमान को स्मरण कर सरल कठिन सब काम कर, सिद्धियाँ हाथ में आयी हुई ही समझ। अर्थात् हनुमान जी के स्मरण करके चाहे कठिन या सरल कार्य हो सभी आसानी से हो जाते हैं ॥ २३० ॥

सुख-मुद-मंगल-कुमुद-विधु सगुन-सरोरुह-भानु।
करहु काज सब सिद्धि सुभ आनि हिये हनुमान ॥ २३१ ॥

हनुमान जी को हृदय में ला कर सब कार्य करो। सभी सिद्धियाँ शुभ होंगी, हनुमान जी सुख आनन्द मंगल रूपी कुमुदिनी के लिये चन्द्रमा और शकुन रूपी कमल के लिये सूर्य हैं ॥ २३१ ॥

सकल काज सुभ समउ भल, सगुन सुमंगल जानु।
कीरति विजय विभूति भलि, हिय हनुमानहिं आनु ॥ २३२ ॥

श्रीहनुमान जी को हृदय में ले आ, इससे कीर्ति, विजय, ऐश्वर्य प्राप्त होगी, सब काम आसानी से होंगे, बुरा समय भी भला हो जायगा और सुन्दर आनन्ददायक शकुन होंगे ॥ २३२ ॥

सूर-सिरोमनि साहसी, सुमति समीरकुमार।
सुमिरत सब सुख-संपदा-मुद-मंगल-दातार ॥ २३३ ॥

सारे सुख ऐश्वर्य, आनन्द मंगल के दाता पवनकुमार हनुमान को स्मरण करने वाले वीरों के शिरोमणि, साहसी और बुद्धिमान हो जाते हैं ॥ २३३ ॥

तुलसी-तनुसर सुख जलज भुज-रुज गज बरजोर।
दलत दयानिधि देखिए कपि केसरीकिसोर ॥ २३४ ॥

कहा जाता है कि इस दोहे की रचना तुलसीदास जी ने बाहु फोड़ा से पीड़ित होने पर की है—तुलसी के शरीर रूपी तालाब में सुख रूपी कमल को बाहु की पीड़ा रूपी हाथी कुचले डालता है, हे केशरी किशोर वानर हनुमान जी! देखिये। अर्थात् मेरे इस रोग को दूर कीजिए ॥ २३४ ॥

भुज-तरु-कोटर रोग-अहि बरबस कियो प्रवेस।
विहगराज-वाहन तुरत काढिय, मिटइ कलेस ॥ २३५ ॥

तुलसीदास जी अपने दुःख के निवारणार्थ निवेदन करते हैं, तुलसी के भुजा रूपी वृक्ष के कोटर में रोग रूपी सर्प ने बलात्कार प्रवेश किया है, अतः हे गरुड़ की सवारी करने वाले

विष्णु ! भुजा रूपी कोटर से रोग रूपी सर्प को शीघ्र निकालिये जिससे दुःख दूर हो ॥ २३५ ॥

वाहु-विटप सुख-विहंग-थलु लगी कुपीर कुआगि।
राम कृपा जल सींजिये, वेगि दीन हित लागि ॥ २३६ ॥

वाहु रूपी वृक्ष के सुख रूपी पक्षी की घोसले में कुरोग रूपी दावाग्नि लगी है, हे राम ! अपनी कृपा रूपी जल से इस दीन की भलाई के लिए सींचिये। क्योंकि सम्भव है यह वाहु पीड़ा सर्वत्र फैल कर शरीर को बेचैन कर दे, जिससे राम भजन न हो सके ॥ २३६ ॥

उपरोक्त तीन दोहों में गोस्वामी जी की अनन्यभक्ति झलक रही है। सर्व भाव से अपने इष्ट देव की आश्रित हो जाना ही आत्मनिवेदन और शरणागति की पराकाष्ठा है। अपने रोग के दमनार्थ तुलसीदास जी अन्य किसी उपचार या देवी देवता की सहायता नहीं चाहते। केवल अपने आराध्य देव और उनके पथ प्रदर्शक पवनतनय हनुमान जी की ही सहायता चाहते हैं।

सोरठा

मुकुति जनम महि जानि, ज्ञान खानि, अघहानिकर।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइय कस न ॥ २३७ ॥

जहाँ मुक्ति उत्पन्न होती है अर्थात् जहाँ मरने पर जीवमुक्त हो जाता है, फिर जन्म धारण नहीं करता यह बात संसार में प्रसिद्ध है, जो ज्ञान का भण्डार है, पापों को हरने वाली है, जहाँ पार्वती सहित शिवजी निवास करते हैं ऐसी काशी नगरी में क्यों नहीं वास करता ? ॥ २३७ ॥

जरत, सकल सुर वृन्द विषम गरल जेहि पान किय।
तेहि न भजसि मति मंद, को कृपालु संकर सरिस ॥ २३८ ॥

समुद्र मथन के समय जो हलाहल निकला, उससे देवता जलने लगे, ऐसे विषम हलाहल को जिसने पान कर लिया अरे मूढ़ ! ऐसे शिवजी को क्यों नहीं भजता, उनके समान दयालु कौन है ? ॥ २३८ ॥

दोहा

वासर ढासनि के ढका रजनी चहुँ दिसि चोर।
संकर निज पुर राखिये चितै सुलोचन-कोर ॥ २३९ ॥

दिन में तो डाकू घेरे रहते हैं और रात में चारों ओर से चोर अतः हे शिव जी ! अपनी दृष्टि के कोर से देख कर अपनी नगरी में मेरी रक्षा कीजिए ॥ २३९ ॥

अपनी बीसी आपुही पुरिहि लगाये हाथ।
केहि विधि विनती विश्व की करौं विस्व के नाथ ॥ २४० ॥

अपनी ही वीसी* में आपके ही हाथ लगाने से पूरा पड़ेगा । हे विश्व के स्वामी ! मैं एक व्यक्ति किस तरह से विश्व की विनती कर आपको प्रसन्न करके सहायक बना सकता हूँ ॥ २४० ॥

और करै अपराध कोउ, और पाव फल भोग।
अति विचित्र भगवंत गति कोउ न जानिबे जोग ॥ २४१ ॥

अपराध तो कोई और करे और उसका दण्ड कोई और भोगे, यह भगवान् की विचित्र महिमा है, इसको कोई जान नहीं सकता ॥ २४१ ॥

श्रीरामचन्द्र जी को वन जाते समय दशरथ जी ने यह दोहा कहा था । क्योंकि वे स्त्री के वशीभूत होकर श्रीरामचन्द्र जी सरीखे पुत्र को वन दिया। अपराधी महाराज दशरथ थे, पर दुःख भोगना पड़ा श्रीराम, लक्ष्मण और सीता को।

जीव और शरीर के सम्बन्ध में भी यही बात है। पापादि कर्म शरीर के द्वारा होता है, पर नरकादि की यन्त्रणाएँ जीव को भोगना पड़ता है।

प्रेम सरीर प्रपंच-रुज उपजी अधिक उपाधि।
तुलसी भलौ सुबैदई वेगि बाँधिये व्याधि ॥ २४२ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के प्रेम मार्ग में चलते हुए; संसारी मायाजाल संम्बन्धी रोग उत्पन्न होकर अनेक वासनाएँ रूपी उपाधि प्रकट करता है, जिससे मनुष्य संसारी विषयवासना में फँस जाता है, भगवान् के अकाम भक्ति भाव को भूल जाता है, अतः गोस्वामी जी कहते हैं कि इस रोग और उससे उत्पन्न अनेक उपाधियों को सब से बढ़ कर यही औषधि है, सब से पहले रोग ही को रोक दे, फिर जब रोग ही नहीं तो

*ब्रह्मा, विष्णु महेश की एक एक वीसी सम्वत्सरों के वीस वीस वर्ष की होती हैं, ब्रह्मा की वीसी में उत्पत्ति, विष्णु की वीसी में अमनचैन, और शिव की वीसी में मृत्यु अधिकता से होती है।

शिव वीसी सम्वत् १६६५ से १६८५ तक थी। उस समय काशी में महामारी आदि अनेक रोग फैले हुए थे। मृत्यु संख्या भी खूब बढ़ी थी। काशी में हाहाकार मचा हुआ था। मालूम होता है कि काशी की यही दशा देखकर गोस्वामी जी ने इस दोहे द्वारा शिव जी से रोग शान्ति के लिए विनय की है।

उपाधियाँ कहाँ से आवेंगी। भाव यह कि पहले अपने मन को संसारी माया जाल से ही हटा ले, किसी प्रकार की आशा न आने दे फिर भगवद्भक्ति में विघ्न ही कहाँ से आने पावेगा ॥ २४२ ॥

हम हमार आचार बड़, भूरि भार धरि सीस।
हठि सठ परबस परत जिमि कीर, कोस-कृमि, कीस ॥ २४३ ॥

अहमत्व (जो कुछ हूँ मैं ही हूँ) और ममता के व्यवहार का बड़ा भारी बोझ है और इस बोझ को मनुष्य अपने सिर पर धर कर स्वयं हठ कर परवश पड़ता है, जैसे तोता* रेशम का कीड़ा† और बन्दर‡ ॥ २४३ ॥

केहि मग प्रविसति जाति केहि कहु दर्पन में छाँह।
तुलसी त्यों जगजीवगति करी जीव के नाँह ॥ २४४ ॥

कह तो शीशे में छाया किस मार्ग से प्रवेश करती है और किस मार्ग से निकल जाती है। तुलसीदास जी कहते हैं कि वही दशा जीव के स्वामी ने जीव की की है। भाव यह कि जैसे दर्पन में छाया को आते जाते कोई नहीं देखता वैसे ही परमात्मा का प्रतिविम्ब स्वरूप जीवात्मा शरीर में प्रवेश कर कुछ काल बाद निकल जाता है, पर कोई आते जाते नहीं देखता ॥ २४४ ॥

सुख सागर सुखनींदबस, सपने सब करतार।
माया मायानाथ की को जग जाननहार ॥ २४५ ॥

जीव स्वयं सुख का सागर है अथवा सुख के सागर का निवासी है, पर मोह रूपी सुख की नींद में सो रहा है। स्वप्नवत् सब कामों को वह करता है, वास्तविक वह कर्त्ता नहीं है। मायानाथ की माया ऐसी प्रबल है कि परमात्मा का रूप छिपा कर अपने ही रूप को प्रत्यक्ष दिखाती है, भला इस माया को कौन जानने वाला है ॥ २४५ ॥

---

* तोते के विषय में यह कहा जाता है कि यदि अरगनी बाँध कर उसमें लाल मिर्चे टाँग दिये जायँ तो तोता आकर उस पर बैठ जाता है, पर बैठते ही नीचे लटक जाता है और पृथ्वी पर गिरने के भय से अरगनी को छोड़ता नहीं। इस लिए वह स्वयं पकड़ा जाता है।

†रेशम का कीड़ा अपने चारों ओर रेशम का गोला बना कर स्वयं उसमें बन्द हो जाता है। जब रेशम निकालने के लिए रेशम का कोया गर्म पानी में डाला जाता है तो वह मर मिटता है।

‡बन्दर के विषय में कहा जाता है कि किसी तंग मुँह के वर्तन में चना डाल कर ज़मीन में गाड़ दिया जाता है। बन्दर चने के लोभ से उसमें से चना निकालने के लिए हाथ डालता है, पर जब मूठी में चना भर लेता है तो उसकी मूठी बाहर नहीं निकल सकती, लोभ वश न तो वह चना छोड़ता है न हाथ निकलता है। अत वह पकड़ लिया जाता है।

इस दोहे में तुलसीदास जी ने तीनों अवस्थाओं का दिग्दर्शन कराया है, सुख सागर से सुसुप्ति, सुख निद्रा से स्वप्न और सपने सब कतार से जाग्रत, पर ये तीनों अवस्थाएँ स्वप्नवत् मिथ्या हैं ॥ २४५ ॥

जीव सीव सम, सुख सयन, सपने कछु करतूति ।
जागत दीन मलीन सोइ बिकल बिषाद बिभूति ॥ २४६ ॥

जीव ईश्वर के समान है "ईश्वर अंश जीव अविनाशी" पर वह सुख नींद में सो रहा है, अर्थात् माया में पड़ जाने के कारण उसे अपने वास्तविक स्वरूप "ईश्वर अंश" का ज्ञान नहीं है और वह स्वप्नावस्था में कुछ काम भी करता है, अर्थात् माया में पड़ कर जो कुछ वह करता है उसका कर्ता भी अपने को समझता है, जब वह जाग उठता है, उसको अपने आत्म स्वरूप का ज्ञान हो जाता है, तो उसे अपनी दीनावस्था पर ग्लानि प्राप्त होती है, अर्थात् उसे संसारी विषयवासना में नष्ट किये हुए जीवन का बड़ा पश्चाताप होता है, फिर उसे संसारी विषयों में आनन्द नहीं मिलता, सत्चित आनन्द वाली अवस्था रूपी ऐश्वर्य के नष्ट होने से वह खेद से व्याकुल हो जाता है ॥ २४६ ॥

सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ ।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ ॥ २४७ ॥

यदि सपने में कोई राजा भिखार हो जाय और कोई भिखार स्वर्ग का राजा हो जाय तो जागने पर राजा को न तो कुछ हानि ही होती है और न भिखार को लाभ ही। यही दशा संसारी प्रपंच का भी है। भाव यह कि जब जीव जाग जाता है, उसे आत्म-स्वरूप का ज्ञान हो जाता है तो उसे शारीरिक सुख दुःखादि सपने में अनुभव की हुई दशा के समान आप से आप दूर हो जाते हैं और जीव अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित हो जाता है ॥ २४७ ॥

तुलसी देखत, अनुभवत, सुनत न समुझत नीचु ।
चपरि चपेटे देत नित केस गहे कर मीचु ॥ २४८ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं—अरे नीच मन ! तू देखता है, अनुभव करता है, गुरु आदि से सुनता है पर समझता नहीं, मृत्यु चोटी पकड़ कर नित्य हीं चपत जमाया करती है, अर्थात् यह देखते, अनुभव करते सुनते हुए कि लोग, मरते हैं, मरेंगे, मर गये, फिर भी समझता नहीं, आधिभौतिक, दैविक, दैहिक, में जो कष्ट हैं यही काल के थप्पड़ हैं जो अकसर पड़ा करते हैं ॥ २४८ ॥

करम खरी कर, मोह थल, अंक चराचर-जाल।
हनत गुनत गनि गुनि हनत जगत ज्योतिषी-काल ॥ २४९ ॥

जैसे ज्योतिषी खरिया मिट्टी से पट्टी पर अंकों का हिसाब लगाता, गुणा कर फिर विचार कर मिटा देता है, वैसे इस संसार में काल चराचर जीवों के कर्मानुसार सुख दुःखादि की घटती और बढ़ती देता हुआ उत्पन्न, वृद्धि और मृत्यु करता रहता है ॥ २४९ ॥

कहिबे कहँ रसना रची, सुनिबे कहँ किय कान।
धरिबे कहँ चित हित सहित परमारथहि सुजान ॥ २५० ॥

हे सुजान! श्री सीताराम कहने ही के लिए जीभ बनायी गयी है और सीताराम सुनने के लिए कान और परमार्थ यही है कि चित्त में प्रेम सहित श्रीराम को रखे ॥ २५० ॥

ज्ञान कहै अज्ञान बिनु, तम बिनु कहै प्रकास।
निरगुन कहै जो सगुन बिनु, सो गुरु तुलसीदास ॥ २५१ ॥

बिना अज्ञान के ज्ञान का स्वरूप बतलावे, बिना अंधकार के प्रकाश का ज्ञान करावे, बिना सगुण ब्रह्म के निर्गुण ब्रह्म का निरूपण करे उसी को तुलसीदास जी अपना गुरु मानते हैं। भाव यह कि जैसे अज्ञान के बिना ज्ञान का, अंधकार के बिना प्रकाश का स्वरूप नहीं बतलाया जा सकता वैसे ही सगुण ब्रह्म के बिना निर्गुण ब्रह्म का निरूपण नहीं हो सकता है ॥ २५१ ॥

अंक अगुन आखर सगुन सामुझि उभय प्रकार।
खोये राखे आपु भल तुलसी चारु बिचार ॥ २५२ ॥

अंक एक दो तीन आदि निर्गुण हैं, गणित द्वारा केवल मानसिक सिद्धान्त की स्पष्टता ही किया जा सकता है, एक का अंक चींटी से लेकर ईश्वर तक के लिये लिखा जा सकता है, जब तक इसके साथ अक्षर का संयोग नहीं होगा तब तक किसी खास वस्तु का ज्ञान नहीं हो सकता जैसे एक कहने से यह स्पष्ट नहीं होता कि एक क्या वस्तु, पर एक आदमी कहने से अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

पर अंक और अक्षर दोनों अनन्त हैं। इनकी मर्यादा नहीं जैसा चाहे शब्द समूह की रचना हो सकता है। तत्व रूप से भी अक्षर एक है, वही एक अंक सब अंकों में व्याप्त है, अक्षर भी एक है, देखो गीता में 'अक्षराणामकारोस्मि' अतः इससे यही सिद्ध

होता है कि जैसे अंक और अक्षर अनन्त और सर्व व्यापी हैं वैसे ही ईश्वर भी सगुण और निर्गुण रूप से सर्व व्यापी हैं।

जैसे अंक निर्गुण है और अक्षर सगुण है वैसे ही ब्रह्म भी निर्गुण और सगुण है, पर उपासना भेद से मनुष्य की समझ ही दो प्रकार की है, अर्थात् निर्गुणोपासक सगुण का निरादर ही करते हैं, पर तुलसीदास के मत से यह उत्तम विचार है कि अपने को सगुण और निर्गुण दोनों रूप में भुलाये रहै, इसमें अपने मन में भेद भाव ही न आने दे कि सगुण निर्गुण दो हैं ॥ २५२ ॥

परमारथ-पहिचानि-मति लसति बिषय लपटानि।
निकसि चिता तें अधजरति, मानहुँ सती परानि ॥ २५३ ॥

परमार्थ में लपटी हुई बुद्धि ऐसी शोभित होती है, मानों सती स्त्री पति के साथ चिता में अधजली होकर भागती है ॥ २५३ ॥

यह दोहा उन लोगों के लिये कहा गया है जो लोग सर्व त्यागी बन कर फिर सर्व संग्रही बन जाते हैं और घर घर घूमते फिरते हैं।

सीस उघारन किन कहेउ, बरजि रहे प्रिय लोग।
घर ही सती कहावती जरती नाह-वियोग ॥ २५४ ॥

इस दोहा का पूर्व दोहे से सम्बन्ध है, चिता से अध जलती भागी हुई सती से सवाल है—तुमको सिर उघारने के लिए किसने कहा था, अर्थात् जब तुम लज्जा खो बैठी, प्रिय लोग सती होने जाने के पूर्व ही मना भी कर रहे थे, वैसी दशा में यदि तू घर ही रह जाती और अपने प्रिय के वियोग में अपने शरीर को जला डालती तो यही उत्तम होता ॥ २५४ ॥

यह उन संन्यासियों के लिये है, जो मुंड तो मुडा लेते हैं, पर धन का संग्रह करते ही जाते हैं, उनके लिए तो यही श्रेष्ठ कि गृहस्थाश्रम में रह कर ही सत्कर्म से उपार्जित धन पैदा करते और भगवत भजन करते।

खरिया, खरी कपूर सब उचित न पिय तिय त्याग।
कै खरिया मोहि मेलि, कै बिमल बिवेक बिराग ॥ २५५ ॥

हे प्रिय! जब कि आपकी झोली में खरी कपूर सब चीज हैं तो स्त्री त्यागना उचित नहीं, या तो इन सब के साथ मुझे भी रखो या इन को त्याग कर निर्मल विवेक और वैराग्य ही रखो, अर्थात् इन संसारी वस्तुओं का संग्रह त्याग कर भगवद्भजन ही करो ॥ २५५ ॥

यह किसी स्त्री ने अपने साधु पति के प्रति कहा है—जो साधु हो जाने पर भी इन वस्तुओं को संग्रह किये हुए था।

घर कीन्हें घर जात है, घर छाँड़े घर जाइ।
तुलसी घर बन बीच ही राम-प्रेमपुर छाइ ॥ २५६ ॥

घर (गृहस्थी) में अत्यन्त लिप्त रहने पर भी एक दिन घर छोड़ना ही पड़ता है, और घर छोड़ देने से भी घर चला ही जाता है अर्थात् घर छोड़ वन में जाने से घर तो छूट जाता है, पर फल कुछ नहीं होता। तुलसीदास जी कहते हैं कि घर और वन के बीच में श्रीरामचन्द्र जी के प्रेम रूपी नगर में वास करे अर्थात् भगवान् में प्रेम करे ॥ २५६ ॥

दिये पीठि पाछे लगै, सनमुख होत पराय।
तुलसी संपति छाँह ज्यों लखि दिन बैठ गँवाय ॥ २५७ ॥

गोस्वामी जी ने इस दोहे में सम्पत्ति की तुलना छाया से की है। यदि कोई व्यक्ति सूर्योदय के समय पूर्व की ओर जाय तो छाया उसके पीछे पीछे चली जाती है, पर वही व्यक्ति यदि पछिम की ओर चले तो छाया आगे भागती है, यही दशा धन की है, धन के पीछे पड़ो तो वह भागता चला जाता है, और उसकी उपेक्षा करे तो पीछे चलता है, अतः घर में बैठ कर जो कुछ प्राप्त हो उसी पर सन्तुष्ट रह कर भगवान् का भजन करने में समय बितावे ॥ २५७ ॥

तुलसी अदभुत देवता आसा देवी नाम।
सेये सोक समर्पई बिमुख भये अभिराम ॥ २५८ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि आशा देवी नाम का यह विचित्र देवता है यदि इसकी सेवा की जाय तो शोक ही बढ़ाती है और यदि इसकी उपेक्षा की जाय तो परमानन्द प्राप्त होता है। भाव यह कि आशा की तृप्ति कभी नहीं होती ज्यों ज्यों आशा किया जाता है उतना ही यह बढ़ती जाती है, इसके चक्र में पड़ कर जीव सदा व्यग्र रहता है, अतः इसको त्यागने में ही सन्तोष प्राप्त होता है, मन सन्तुष्ट रहने पर ही भगवद्भजन में नित्यानन्द की प्राप्ति होती ॥ २५८ ॥

सोई सेंवर तेइ सुवा सेवत सदा बसंत।
तुलसी महिमा मोह की सुनत सराहत संत ॥ २५९ ॥

वही सेमल का वृक्ष है, जिसके सुन्दर फल फूल होते हैं, पर उसके फल से न तो क्षुधा की तृप्ति ही होती है और न कोई उसमें स्वाद ही रहता है, तोते भी वही हैं, जिनको यह मालूम है कि सेमर के फल से कुछ लाभ नहीं फिर भा बसन्त में उसके सुन्दर फल को देखकर सदा सेवते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि यही हाल संसारी माया का है जो अन्त में दुःखदायी होती है, फिर भी मनुष्य इस संसारी सुख से अलग नहीं होता ॥ २५९ ॥

करत न समुझत झूठ-गुन, सुनत होत मतिरंक।
पारद प्रगट प्रपंचमय, सिद्धिउँ नाउँ कलंक ॥ २६० ॥

मनुष्य भगवद्भक्ति नहीं करता, क्योंकि वह उसे असत्य मानता है, पर जब इस बात को सुनता है कि इसमें अनेक गुण हैं तो उसकी बुद्धि लुभा जाती है, अर्थात् सांसारिक ऐश्वर्यों की महता को सुनकर उसकी बुद्धि लुभा जाती है, पर वह इस बात को नहीं समझता कि जैसे पारद के अनेक गुण हैं, और उसके सिद्ध करने में भी अनेक झँझट हैं, सिद्ध होने पर भी कलङ्क ही लगता है, अर्थात् ऐश्वर्यादि की प्राप्ति में अनेक मक्कार फरेब हैं, अन्त में उसका परिणाम भी भला नहीं ॥ २६० ॥

ज्ञानी तापस सूर कवि कोविद गुनआगार।
केहि कै लोभ बिडंबना कीन्ह न यहि संसार ॥ २६१ ॥

ज्ञानी, तपस्वी, शूर कवि, पण्डित, गुण के भण्डार इस संसार में मोह ने किसको नहीं भ्रमाया ॥ २६१ ॥

श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता बधिर न काहि।
मृगनयनी के नयन सर, को अस लाग न जाहि ॥ २६२ ॥

धन के मद ने किसको टेढ़ा नहीं किया और ऐश्वर्य ने किसको बहिरा नहीं बनाया और मृगनयनी स्त्री के नयन बाण किसको नहीं लगा (सभी को) ॥ २६२ ॥

व्यापि रहेउ संसार महँ माया कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट, दंभ कपट पाखंड ॥ २६३ ॥

इस संसार में माया की प्रबल सेना व्याप रही है, उसके सेनापति कामदेव हैं, वीर सैनिक, दंभ, कपट और पाखण्ड है (सन्त वही हैं जो इनसे बच जायँ) ॥ २६३ ॥

तात तीन अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिज्ञान धाम मन, करहिं निमिष महँ छोभ ॥ २६४ ॥

हे तात ! काम, क्रोध और लोभ ये तीन बड़े दुःखद हैं, ये विज्ञान के धाम मुनियों के मन में एक पल में क्षोभ उत्पन्न कर देते हैं ॥ २६४ ॥

लोभ के इच्छा दंभ बल, काम के केवल नारि ।
क्रोध के परुष बचन बल, मुनिबर कहहिं बिचारि ॥ २६५ ॥

लोभ का बल इच्छा और दंभ है, और काम की केवल स्त्री है, कटु वचन क्रोध का बल है, यह मुनिवर विचार कर कहते हैं ॥ २६५ ॥

काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह के धारि ।
तिन्ह महँ अति दारुन दुःखद माया रूपी नारि ॥ २६६ ॥

अज्ञान की प्रबल सेना काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद हैं, इन में अत्यन्त दारुण दुःख देने वाली, माया रूपी स्त्री है ॥ २६६ ॥

काह न पावक जारि सक, का न समुद्र समाइ ।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग काल न खाइ ॥ २६७ ॥

अग्नि क्या नहीं जला सकती, (सब कुछ) समुद्र में क्या नहीं समा सकता (सब कुछ) प्रबल अबला (स्त्री) क्या नहीं कर सकती (सब कुछ) संसार में काल ने किस को नहीं खाया, कौन नहीं मरा (सभी) ॥ २६७ ॥

जनम पत्रिका बरति कै देखहु मनहिं विचारि ।
दारुन बैर मीचु के बीच बिराजति नारि ॥ २६८ ॥

जन्म कुण्डली खोल के देख लो और मन में विचार लो, विकट शत्रु मृत्यु के बीच में स्त्री* विराजमान है ॥ २६८ ॥

दीप सीखा सम जुवति-तन, मन जनि होसि पतंग ।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग ॥ २६९ ॥

हे मन ! स्त्रियों का शरीर दीप की शिखा के समान है, तू उसमें पतंग हो कर मत जल ! काम और मद को छोड़ श्रीरामचन्द्र जी को भज और सदा सत संग कर ॥२६९॥

काम क्रोध मद लोभ रत गृहासक्त दुखरूप ।
ते किमि जानहिं रघुपतिहिं मूढ़ परे भव कूप ॥ २७० ॥

---

*जन्म कुण्डली में छठा स्थान शत्रु का सतवाँ स्त्री का और आठवाँ मृत्यु का माना जाता है।

जो काम, क्रोध, मद, लोभ में संलग्न (लगा हुआ) है, दुःख का रूप गृहस्थी में आसक्त है, वह श्रीरामचन्द्र जी को कैसे जान सकता है, वह तो संसार रूपी कूप में पड़ा हुआ है ॥ २७० ॥

ग्रहगृहीत पुनि बातबस, तेहि पुनि बीछी मार ।
ताहि पियाई बारुनी, कहहु कौन उपचार ॥ २७१ ॥

जिसके ग्रह दशा बुरे हों, उस पर उसे भूतादि की भी बाधा हो, उस पर बीछू ने भी उसे डँक मारा हो, इसके ऊपर उसे शराब भी पिला दी जाय तो कहो उसकी क्या दशा होगी ॥ २७१ ॥

इस दोहे को गोस्वामी जी ने भरत से अपनी दशा पर कहलाया है, भूत तो उन पर पिता की मृत्यु था, ग्रह उनकी माता कैकेयी थी, राम का वन जाना बिछू का काटना था और राज्य पाना मदिरा पान था ।

ताहि की संपति सगुन सुभ, सपनेहु मन बिस्राम ।
भूत द्रोह रत मोह बस राम बिमुख रत काम ॥ २७२ ॥

उसे शुभ सगुन और सम्पति प्राप्त हो सकती है, कभी मन में विश्राम पा सकता है, जो पाराये की बुराई में लगा है, मोह के वश है, राम विमुखी है और काम में आसक्त है ॥ २७२ ॥

कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिवेक ।
होइ घुनाच्छरन्याय जौ, पुनि प्रत्यूह अनेक ॥ २७३ ॥

तुलसीदास जी इस दोहे में विवेक की प्राप्ति की कठिनता दर्शाते हैं । ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" अर्थात् ब्रह्म ही सत्य है संसार असत्य । इसी सत्यासत्य के विचार को विवेक कहते हैं । अव्यक्त उपासना भाव से इस बात का दृढ़ विश्वास तथा अनुभव हो जाना कि संसार स्वप्नवत् मिथ्या है विवेक है और भक्ति भाव से पर ब्रह्म सीताराम का जानना ही विवेक है ।

विवेक कहने में बहुत कठिन है, इस स्थूल जगत् में जिसमें चर अचर सभी जीव मोहित हैं मिथ्या का ज्ञान करा देना सरल कार्य नहीं है । उसका समझना भी अत्यन्त कठिन है । फिर साधन की कठिनता के विषय में कहना ही क्या ? करोड़ों में विरला ही कोई पुरुष पाता है । जैसे घून लकड़ी के भीतर कटता है तो उसमें अनेक भाँति के चित्र बनते हैं, यदि करोड़ों में से किसी एक घुन के काटने से रामनाम बन गया तो

वह मुक्त हो जाता है, वैसे ही विवेक का पाना भी बड़ा कठिन है, यदि कोई भाग्यवान् पागया तो उसे मुक्ति या सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ २७३ ॥

खल प्रबोध, जगसोध, मन को निरोध, कुल सोध ।
करहिं ते फोकट पचि मरहिं, सपनेहु सुख न सुबोध ॥ २७४ ॥

दुष्टों को ज्ञान बताने में संसार का संसोधन में (अर्थात् अपने अन्तःकरण को शुद्ध न कर संसार के लोगों को शुद्ध हृदय बनाने में) मन का निरोध ("योगश्चित वृत्ति निरोधः" योग के द्वारा चित्त की वृत्तियों को रोकना जो अत्यन्त कठिन काम है) में, कुल शोध अर्थात् अपने कुल की श्रेष्ठता बतलाने में जो परिश्रम करते हैं वे व्यर्थ ही कष्ट उठाते हैं, उनको स्वप्न में भी न तो ज्ञान प्राप्त होता है न सुख ॥ २७४ ॥

सोरठा

कोउ विस्राम कि पाव तात सहज संतोष बिनु ।
चलै कि जल बिनु नाव, कोटि जतन पचि पचि मरिय ॥ २७५ ॥

हे तात ! चाहें करोड़ों उपाय करके मर मिटे, पर बिना जल के नाव नहीं चल सकता वैसे ही बिना स्वाभाविक सन्तोष के कोई भी शान्ति नहीं पा सकता ॥ २७५ ॥

सुर नर मुनि कोउ नाहिं जेहि न मोह माया प्रबल ।
अस बिचारि मन माहिं भजिय महा मायापतिहि ॥ २७६

देवता, मनुष्य, मुनि कोई भी ऐसा नहीं जिसको प्रबल माया ने मोह न लिया हो ऐसा विचार कर मायापति श्रीराम को भजो ॥ २७६ ॥

दोहा

एक भरोसो एक बल एक आस विश्वास ।
एक राम घन स्याम हित याचत तुलसीदास ॥ २७७ ॥

जैसे चातक केवल स्वाती के बूँद ही की आशा करता है, वैसे ही तुलसीदास को केवल मेघ के समान श्याम श्रीराम का ही केवल भरोसा है, उन्हीं का बल है, उन्हीं की आशा है ॥ २७७ ॥

इस दोहे में भक्तों की अन्यनता दर्शाया गया है, जैसे चातक केवल स्वाती के जल का ही आशा किये रहता है, और उसी की लव लगाये रहता है, वैसे ही भक्तों को भी प्रथम अवस्था से ही केवल श्रीराम का भरोसा और आशा करना चाहिये दूसरे का नहीं ।

जौ घन बरषै समय सिर, जौ भरि जनम उदास।
तुलसी या चित चातकहि तऊ तिहारी आस॥ २७८॥

यदि मेघ समय पर वर्ष जाय या जन्म भर भी नहीं बरसे तौ भी चातक निराश नहीं होता, वह अपना लव लगाये ही रहता है, वैसे ही तुलसीदास का चित्त रूपी चातक श्रीराम रूपी मेघ की आशा किये हुए है॥ २७८॥

जैसे चातक मेघ का लव लगाये रहता है, चाहें उस को एक बूँद भी स्वाति का जल न मिले, वैसे ही भक्त को भी निराश न होना चाहिए। उसको सदा श्रीराम का आशा किये रहना चाहिए।

चातक तुलसी के मते स्वातिहु पियै न पानि।
प्रेमतृषा बाढ़ति भलो, घटे घटैगी आनि॥ २७९॥

तुलसीदास जी के मत से तो चातक को स्वाति का जल भी न पीना चाहिए क्योंकि प्रेम पिपासा का बढ़ना ही अच्छा है, घटने से तो प्रण घट जायगा॥ २७९॥

तुच्छ कामनाओं का चाहना न करना चाहिए। क्योंकि भक्ति का प्राप्त करना ही श्रेयस्कर है और भक्तिप्राप्ति के लिए प्रेम का बढ़ना ही उत्तम है, न कि तुच्छ वस्तुओं की प्राप्ति पर सन्तुष्ट होना।

रटत रटत रसना लटी, तृषा सूखि गे अंग।
तुलसी चातक प्रेम को नित नूतन रुचि रंग॥ २८०॥

जैसे पपीहा की जीभ रटते रटते लस्त हो जाती है और प्यास से सब अँग शिथिल हो जाते हैं फिर भी उसका प्रेम नित्य ही नया रँग पकड़ता है, वैसे ही रामनाम जपने में अपनी जीभा को लस्त करदे और अपना प्रेम पिपासा बढ़ाता ही जाय॥ २८०॥

चढ़त न चातक-चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोख।
तुलसी प्रेमपयोधि की ताते नाप न जोख॥ २८१॥

चातक के मन में मेघ के एक भी दोष नहीं आता। तुलसीदास जी कहते हैं—अतः प्रेम रूपी समुद्र का न तो माप हो सकता है न जोख अर्थात् प्रेम सागर अथाह है। भाव यह कि सर्व जीवों से ईर्ष्या भाव को त्याग कर श्रीराम में प्रेम करे॥ २८१॥

बरषि परुष पाहन पयद पंख करौ टुक टूक।
तुलसी परी न चाहिये चतुर चातकहि चूक॥ २८२॥

तुलसीदास जी कहते हैं—चाहें मेघ पत्थल वर्ष कर चातक के पंख टुकड़े टुकड़े कर दे पर चतुर चातक को अपने काम से चूकना न चाहिए। भाव यह कि श्रीराम भजन में चाहें जो कुछ आपत्तियाँ आवें उनको सहन करता हुआ सदा भजन करता रहे ॥ २८२ ॥

उपल बरषि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर ॥ २८३ ॥

मेघ गर्ज कर दपटता है, ओले और वज्र गिरा कर दण्ड देता है फिर भी चातक उसे छोड़े दूसरी ओर नहीं देखता। भाव यह कि दुःख सह लेने पर श्रीराम में अनन्य प्रेम हो जाता है ॥ २८३ ॥

पवि, पाहन, दामिनि, गरज, भरि, झकझोर खरि खीझि।
रोष न प्रीतम-दोष लखि, तुलसी रागहि रीझि ॥ २८४ ॥

मेघ चिढ़ कर झकझोर के साथ बिजली, ओले, वज्र गिराता है फिर भी चातक उसके क्रोध से अप्रसन्न हो उसके दोषों को नहीं देखता अपने राग (टेर) से उसे प्रसन्न ही करता है। भाव यह की भगवान् के दुर्गुणों को न देखे उसे अपने प्रेम द्वारा प्रसन्न करे ॥ २८४ ॥

मान राखिबो, माँगिबो, पिय सो नित नव नेहु।
तुलसी तीनिउ तव फबैं जौं चातक मत लेहु ॥ २८५ ॥

मान की रक्षा करना, माँगना, प्रियतम से नित्य नया प्रेम ये तीनों तभी फवते हैं जब चातक के मत से चले ॥ २८५ ॥

तुलसी चातक ही फबै मान राखिबो प्रेम।
वक्र बूँद लखि स्वातिहू निदरि निबाहत नेम ॥ २८६ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं—प्रेम के मान की रक्षा करना चातक ही को शोभा देता है, क्योंकि स्वाति की टेढ़ी बूँदे देख कर उसकी उपेक्षा कर अपने नेम ही को निवाहता है। भाव यह कि अन्य ऐश्वर्यादि की उपेक्षा कर श्रीराम के एक प्रेम ही का वरदान लेना श्रेष्ठ है ॥ २८६ ॥

तुलसी चातक माँगनो एक, सबै घन दानि।
देत जो भूभाजन भरत, लेत जो घूंटक पानि ॥ २८७ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि चातक का माँगना भी एक ही है दानी मेघ जो कुछ देता है उसे पृथ्वी भर देता है और स्वयं एक घूंट पानी लेता है ॥ २८७ ॥

तीनि लोक तिहुँ काल जस चातक ही के माथ।
तुलसी जासु न दीनता सुनी दूसरे नाथ ॥ २८८ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि यह चातक ही है जिसकी दीनता तीनों काल तीनों लोक में किसी ने दूसरे प्रभु के पास नहीं सुनी। भाव यह कि जैसे चातक अन्य किसी से भी याचना नहीं करता वैसे प्रभु श्रीरामचन्द्र जी को छोड़ अन्य किसी से भी अपनी दीनता न सुनावे ॥ २८८ ॥

प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि।
जाचक जगत कनाउड़ो कियो कनौड़ो दानि ॥ २८९ ॥

पपीहा और मेघ के प्रेम ने प्रेम परीक्षा की यह नई रीति प्रकट की कि माँगने वाला ही संसार में कृतज्ञ होते हैं, पर यहाँ दानि ही को कृतज्ञ होना पड़ा ॥ २८९ ॥

नहिं जाचत नहिं संग्रही, सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी माँगनेहि को बारिद बिन देइ ॥ २९० ॥

पपीहा न तो पानी ही माँगता है, न पानी का संग्रह करता है, सीस झुका कर भी नहीं लेता (ऊँचा सिर कर पिऊ पिऊ टेरता है) ऐसे मानी माँगने वाले चातक को मेघ के समान दानी के सिवा और कौन दे सकता है ॥ २९० ॥

को को न ज्यायो जगत में जीवन-दायक दानि।
भयो कनौड़ो जाचकहि पयद प्रेम पहिचानि ॥ २९१ ॥

पपीहे के प्रेम को पहचान कर मेघ याचक पपीहा का ऋणिया हो गया, इसने जल वर्षा कर किस किस को नहीं जिलाया (सभी को) भाव यह कि भक्तजन भगवान् को अपने प्रेम से प्रसन्न कर पापी पुण्यात्मा सभी की रक्षा करते हैं ॥ २९१ ॥

साधन साँसति सब सहत, सबहि सुखद फल लाहु।
तुलसी चातक जलद की रीझि बूझि बुध काहु ॥ २९२ ॥

चातक साधन करते हुए सब कष्ट सहता है, पर उसके साधन-फल (वृष्टि) से सब संसार सुख पाता है, तुलसीदास जी कहते हैं कि चातक और मेघ के प्रेम की रीति को कोई पण्डित ही जान पाते हैं। भाव यह कि भक्त भगवान् के प्रेम में अनेक कष्ट सहता

है, पर इससे संसार सुखी होता है, इस बात को कोई ज्ञानी ही समझ सकता है कि किस सुख के लिए भक्त इतना कष्ट सहता है ॥ २९२ ॥

चातक जीवन-दायकहि, जीवन समय सुरीति ।
तुलसी अलख न लखि परै चातक प्रीति प्रतीति ॥ २९३ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि चातक का प्रेम और विश्वास अलख है, वह किसी को दिखाई नहीं पड़ता। अच्छे समय पर उसका प्रेमी मेघ उसे जल देता है, पर निष्काम प्रेम होने से उसे सुखी मन से नहीं लेता ॥ २९३ ॥

जीव चराचर जहँ लगे है सब को हित मेह ।
तुलसी चातक मन बस्यो घन सों सहज सनेह ॥ २९४ ॥

जैसे जहाँ तक चर अचर जीव हैं, सभी की भलाई मेघ से होती है, उसी मेघ में पपीहे का मन बस गया है, सहज स्नेह है, वैसे ही चर अचर सब जीवों के प्रभु श्रीराम जी में स्वाभाविक प्रेम करना चाहिए ॥ २९४ ॥

डोलत बिपुल बिहँग वन, पियत पोषरिन बारि ।
सुजस धवल चातक नवल तुही भुवन दसचारि ॥ २९५ ॥

अनेक पक्षि वन में घूमते फिरते हैं और पोखरियों का जल पिया करते हैं, हे नवल चातक! तेरा ही यश चौदहों लोकों में निर्मल है। भाव यह कि लोग अनेक अन्य देवी देवताओं की उपासना किया करते हैं, पर वही भगवान् का सेवक है जो चातक की भाँति प्रभु में नेह लगाये रहता है ॥ २९५ ॥

मुख-मीठे मानस-मलिन कोकिल मोर चकोर ।
सुजस धवल चातक नवल रह्यो भुवन भरि तोर ॥ २९६ ॥

कोयल मोर चकोर की वाणी मीठी है पर हृदय कठोर है, क्योंकि ये मीठी बोली तो बोलते हैं, पर ये कीट सर्पादि जीवों का भक्षण करते हैं। अतः ये कठोर हृदय हैं। हे नवल चातक! तेरा ही यश चौदहों लोकों में निर्मल है। भाव यह कि यों तो मीठी बोली बोल कर अनेक ठगने वाले साधु हैं, पर चातक के समान जो भक्त हैं वे ही भक्त हैं ॥ २९६ ॥

बास, बेष, बोलनि, चलनि मानस मंजु मराल ।
तुलसी चातक-प्रेम की कीरति बिसद बिसाल ॥ २९७ ॥

वास, वेश, बोली, चलन मन हँस का ही सुन्दर है पर तुलसीदास जी कहते हैं कि चातक के प्रेम की ख्यात बहुत विस्तृत है।। २९७ ।।

प्रेम न परखिय परुषपन, पयद-सिखावन एह ।
जग कह चातक पातकी, ऊसर बरसै मेह ।। २६८ ।।

चातक और मेघ का प्रेम यह शिक्षा देता है कि प्रेम में कठोरता नहीं देखी जाती, पर संसार (मूर्खजन) कहते हैं कि चातक पापी है उसके मुँह में एक घूँट जल नहीं जाता और मेघ ऊसर में वर्षता है ।। २९८ ।।

होइ न चातक पातकी, जीवनदानि न मूढ़ ।
तुलसी गति प्रह्लाद की समुझि प्रेम पथ गूढ़ ।। २६६ ।।

चातक न तो पापी है और न मेघ मूर्ख ही है । तुलसीदास जी कहते हैं कि प्रह्लाद की दशा को समझो, प्रेम पथ बड़ा गूढ़ होता है ।। २९९ ।।

गरज आपनी सबन को, गरज करत उर आनि ।
तुलसी चातक चतुर भो जाचक जनि सुदानि ।। ३०० ।।

अपने गरज को सब का गरज समझ कर चातक चतुर हुआ कि हमारे प्रेमी सब को जीवन देने वाला पानी देता है ।। ३०० ।।

चरग चंगुगत चातकहि नेम प्रेम की पीर ।
तुलसी परबस हाड़ पर परिहै पुहुमीनीर ।। ३०१ ।।

वाज के चंगुल में जब चातक पड़ गया तो उसे अपने प्रेम प्रण के टूट जाने ही का डर हुआ, पर यह समझ कर कि मरने पर मेरी हड्डी पृथ्वी पर पड़ेगी तब उस पर स्वाति की बूँद पड़ेगी । भाव यह कि भक्त को मृत्यु का भय नहीं होता किन्तु प्रेम प्रण में वाधा आने ही का भय होता है ।। ३०१ ।।

बध्यो बधिक परयो पुन्य जल, उलटी उठाई चोंच ।
तुलसी चातक प्रेमपट मरतहु लगी न खोंच ।। ३०२ ।।

बहेलिये ने तीर मारा तो चातक गंगा में जा गिरा, उसने उलट कर अपनी चोंच उठायी (कि गंगा जल न मुख में पड़ जाय, उसका प्रण तो स्वाती के बूँद के लिये है।) तुलसीदास जी कहते हैं कि चातक के प्रेम रूपी वस्त्र में मरते दम भी खोंच न लगा । अर्थात् वह मर मिटा पर दूसरा जल उसके मुख में नहीं गया । भाव यह कि भक्तों का प्रण अटूट होता है, उसमें विछेद नहीं पड़ सकता ।। ३०२ ।।

अंड फोरि कियो चेटुवा, तुष परयो नीर निहारि ।
गहि चंगुल चातक चतुर डारयो बाहिर वारि ॥ ३०३ ॥

चातक अंडा फोड़ बच्चा निकाल लिया। अंडे के छिलके को देखा कि पानी में पड़ गया, चतुर चातक ने तुरन्त उसे निकाल पानी से बाहर किया (क्योंकि यह उसी के अंश से है वह क्यों दूसरे जल में पड़े।) अपने किसी अङ्ग से ऐसा कोई कार्य न हो जिससे प्रेम पथ में वाधा पड़े ॥ ३०३ ॥

तुलसी चातक देत सिख सुतहि बार ही बार ।
तात न तर्पन कीजिये बिना बारिधर-धार ॥ ३०४ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि चातक अपने पुत्र को वार वार शिक्षा देता है कि हे तात! मेरे मरने पर स्वाति के जल से ही मेरा तर्पण करना। भाव यह कि मरने पर भी प्रेम प्रण निवहना चाहिए ॥ ३०४ ॥

सोरठा

जियत न नाई नारि चातक घन तजि दूसरहि ।
सुरसरि हू को बारि मरत न माँगेउ अरघ जल ॥ ३०५ ॥

जिते हुए चातक ने मेघ को छोड़ दूसरे के सामने गर्दन नहीं झुकायी। मरते समय गंगा जल अर्घ के लिए भी नहीं माँगा। भक्त मरते जीते दोनों अवस्था में अपने प्रेम प्रण का पालन करते हैं ॥ ३०५ ॥

सुन रे तुलसीदास, प्यास पपीहहि प्रेम की ।
परिहरि चारिउ मास, जो अँचवै जल स्वाति को ॥ ३०६ ॥

ऐ तुलसीदास! सुन, पपीहे को प्रेम की प्यास है चौमासे का जल न पीकर वह स्वाती ही का जल पीता है। भाव यह की भगवद्भक्ति में प्रेम ही की चाहना होनी चाहिए ॥ ३०६ ॥

जाचै बारहमास, पियै पपीहा स्वातिजल ।
जान्यो तुलसीदास, जोगवत नेही मेह-मन ॥ ३०७ ॥

पपीहा पिव पिव करके बारहों महीने जल की याचना करता है, पर वह पीता है स्वाति ही का जल। तुलसीदास को यही जान पड़ता है, कि पपीहा अपने प्रमी मेघ के मन को जोगवता रहता है। भक्त भगवान् के चरणामृत को ही प्यासे होते हैं ॥ ३०७ ॥

दोहा

तुलसी के मत चातक ही केवल प्रेम पियास।
पियत स्वाति जल जान जग, जाचक बारह मास ॥ ३०८ ॥

तुलसीदास की राय में चातक केवल प्रेम का प्यासा रहता है, वह बारहों महीने याचक (मँगता) बना रहता है पर पीता है स्वाति ही का जल । भक्त अपने प्रेम के टेक पर ही अटल रहते हैं ॥ ३०८ ॥

आल वाल मुकुताहलनि हिय, सनेह-तरु-मूल।
होइ हेतु चित चातकहि, स्वाति-सलिल अनुकूल ॥ ३०६ ॥

हृदय रूपी मोतियों की क्यारी में प्रेम रूपी वृक्ष का जड़ उगा है और चित रूपी चातक के अनुकूल उसे सींचने के लिए स्वाति का जल है । भाव यह कि हृदय में ब्रह्म रूप का दर्शन पा कर ही परमानन्द रूपी जल का पान कर भक्त तृप्त होते हैं ॥ ३०९ ॥

बिबि रसना तनु स्याम है बंक चलनि विषखानि।
तुलसी जस स्रवननि सुन्यो सीस समरप्यो आनि ॥ ३१० ॥

दो जीभ, श्याम शरीर, टेढ़ी चाल और विष की खान वाला अर्थात् सर्प अपने यश को सुन कर अपना सिर समर्पण कर दिया । भाव यह कि छली मधुर वचनों के द्वारा लोगों को ठगते हैं और मूर्ख जन उस झूठी प्रशंसा में धोखा खाते हैं ॥ ३१० ॥

उष्ण काल अरु देह खिन, मगपंथी, तन ऊख।
चातक बतियाँ ना रुचीं अन जल सींचे रूख ॥ ३११ ॥

गर्मी के ऋतु में दुर्बल शरीर, मार्ग का बटोही गर्मी से तप्त शरीर चातक को दूसरे जल से सींचे हुए वृक्ष की छाया तर बैठने की बात अच्छी नहीं लगीं । भाव यह कि सज्जन दुर्जनों का संग नहीं करते ॥ ३११ ॥

अन जल सींचें रूख की छाया तें बरु घाम।
तुलसी चातक बहुत हैं यह प्रवीन को काम ॥ ३१२ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि यों तो चातक बहुत हैं पर चतुर चातक के लिये दूसरे जल से सींचे हुए वृक्ष की छाया की अपेक्षा घाम ही उत्तम है । भाव यह कि यों तो भक्त बहुत से लोग बनते हैं, पर वास्तविक भक्त वही हैं जिनका ईश्वर विमुखी किसी भी वस्तु से प्रयोजन नहीं है ॥ ३१२ ॥

एक अंग जो सनेहता निसि दिन चातकनेह ।
तुलसी जासों हित लगे वही अहार, वही देह ॥ ३१३ ॥

चातक का स्नेह एकाङ्गी है, अर्थात् यद्यपि पपीहा का प्रेमी मेघ उसके प्रति गर्जन, तर्जन सब कुछ करता है, पर चातक अनन्य भाव से उसी का लव लगाये रहता है। तुलसीदास जी कहते हैं कि जिसका जिसे स्नेह हो जाता है वही उसका अहार है, वही शरीर है ॥ ३१३ ॥

आपु ब्याध को रूप धरि, कुहो कुरंगहि राग ।
तुलसी जो मृगमन मुरै परै प्रेमपट दाग ॥ ३१४ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि चाहें राग (मधुर स्वर) हरिण को अपने वश में करके वह (राग) स्वयं व्याध का रूप धर के उसे मार डाले तो भी हरिण का मन नहीं फिरेगा (अर्थात् राग का हिरण प्रेमी है वह उसे अपना मन नहीं हटा सकता।) यदि हटाता है तो प्रेम रूपी वस्त्र में दाग पड़ जायगा ॥ ३१४ ॥

तुलसी मन निज दुति फनिहि ब्याधहि देउ देखाइ ।
बिछुरत होइ न आँधरो ताते प्रेम न जाइ ॥ ३१५ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि मणि अपनी द्युति से बहेलिया को सर्प दिखा देता है (इस से सर्प मारा जाता है) यदि मणि के वियोग होने पर सर्प अंधा* न भी हो तो उसका प्रेम कम नहीं होता ॥ ३१५ ॥

जरत तुहिन लखि बनज बन रवि दै पीठि पराउ ।
उदय बिकस, अथवत सकुच, मिटै न सहज सुभाउ ॥ ३१६ ॥

कमल के वन को पाला से जलते हुए देख कर सूर्य पीठ देकर भागता है, पर कमल का सूर्य के उदय से विकसित और सूर्य के डूबने से संकुचित होने का सहज स्वभाव नहीं छुड़ता। भाव यह कि प्रेमी के ऊपर आपत्ति देख कर छली प्रेमी किनारा कर जाता है, पर इससे भी प्रेमी के प्रेम में अन्तर नहीं आता ॥ ३१६ ॥

देउ आपने हाथ जल मीनहिं माहुर घोरि ।
तुलसी जियै जो बारि बिनु तौ तु देहि कवि खोरि ॥ ३१७ ॥

---

* सर्प के विषय में यह कहा जाता है कि रात को सर्प अपना मणि निकाल कर रख देता है और उसी के प्रकाश में अहार ढूँढता है। उस मणि को कोई ले लेता है तो वह अंधा हो जाता है, और वह सर पटक पटक कर अपना प्राण दे देता है।

तुलसीदास जी कहते हैं कि यदि जल स्वयं अपने हाथ से जल में विष घोल दे तो मछली जल छोड़ कर बाहर जिन्दा रह सकती है, यदि रह सके तो कविजन मेरी इस उक्ति में दोष दें। भाव यह कि अनेक कष्ट सहने पर भी भक्त जन के प्रेम भाव में बाधा नहीं आ सकती ॥ ३१७ ॥

मकर, उरग, दादुर, कमठ जलजीवन जलगेह ।
तुलसी एकै मीन को है साँचिलो सनेह ॥ ३१८ ॥

मकर, जल के सर्प, मेढ़क और कछुवे जल के जीव हैं और जल ही में इनका घर है, (पर जल से इनका सचा प्रेम नहीं है ये जल के बाहर भी जीते रहते हैं।) तुलसीदास जी कहते हैं कि जल से सच्चा प्रेम मछली ही का है, जैसे ही वह जल से बाहर होती है, वैसे ही तलफ तलफ कर प्राण दे देती है ॥ ३१८ ॥

तुलसी मिटै न मरि मिटेहु साँचो सहज सनेह ।
मोरसिखा बिनु मूरि हू पलुहत गरजत मेह ॥ ३१९ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि सत्य स्वाभाविक प्रेम मर मिटने पर भी नहीं मिटता जैसे मोरशिखा* नाम की बूटी मेह के गरजते ही पनप उठती है ॥ ३१९ ॥

सुलभ प्रीति प्रीतम सबै कहत, करत सब कोइ ।
तुलसी मीन पुनीत ते त्रिभुवन बड़ो न कोइ ॥ ३२० ॥

सब कहते हैं कि प्रीतम और प्रीति सुलभ है, अर्थात् सरलता से प्राप्त हो जाता है, और सभी अपने प्रियतम से प्रीति करते हैं, पर तुलसीदास जी कहते हैं कि मछली से बढ़कर तीनों लोक में कोई शुद्ध प्रेमी नहीं है ॥ ३२० ॥

तुलसी जप तप नेम व्रत सब सब ही तें होइ ।
लहै बड़ाई देवता इष्टदेव जब होइ ॥ ३२१ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जप, तप, नेम, व्रत सब ही से हो सकता है और सभी करते हैं पर बड़ाई तभी पा सकते हैं जब अपने देवता (ध्येय) को इष्टदेव (सर्वस्व) मान कर भजन करते हैं ॥ ३२१ ॥

कुदिन हितू सो हित सुदिन, हित अनहित किन होइ ।
ससि छवि हर रविसदन तउ मित्र कहत सब कोइ ॥ ३२२ ॥

---

* मयूर शिखा नाम की एक घास होती है, यह ८ महीने सूखी रहती है, पर मेघ के गर्जन सुनते ही, चाहें मेघ वर्षे या न वर्षे, यह पनप उठती है।

बुरे दिन में जो हित है, वही हित है, चाहें भले दिन में वह बुराई करे या भलाई। चन्द्रमा के प्रकाश को सूर्य आमावस को हर लेता है, फिर भी सूर्य मित्र कहलाता है क्योंकि वह चन्द्रमा को अपने घर में रख लेता है ॥ ३२२ ॥

चन्द्रमा की कलायें सूर्य के प्रकाश से घटती बढ़ती हैं और आमावस्या को सूर्य चन्द्र एक ही स्थान पर आ जाते हैं अतः चन्द्र का प्रकाश बिल्कुल नहीं रह जाता। पर ज्योतिष के अनुसार दोनों एक ही राशिस्थ होने से मित्र कहे जाते हैं।

के लघु के जड़ मीत भल, सम सनेह दुख सोइ।
तुलसी ज्यों घृत मधु सरिस मिले महाविष होइ ॥ ३२३ ॥

वय, विद्या, बल, कुल आदि के विचार से बड़े छोटे की मैत्री ही भली होती है, इसके विपरीत बराबर की मैत्री दुःखदाई होती है जैसे घी सहद बराबर मिलने से हला हल हो जाता है ॥ ३२३ ॥

मान्य मीत सों सुख चहै सो न छुवै छलछाँह।
ससि, त्रिसंकू, कैकेइ गति लखि तुलसी मन माँह ॥ ३२४ ॥

यदि मान्य मित्र से सुख चाहे तो वह छल की छाया तक न छुए अर्थात् जरा भी छल का व्यवहार न रक्खे। चन्द्रमा, त्रिशङ्कू, और कैकेयी की गति हे तुलसी! मन में ही विचार देखो ॥ ३२४ ॥

कहिय कठिन कृत कोमलहु हित हठि होइ सहाइ।
पलक पानि पर ओड़िअत समुझि कुघाय सुघाइ ॥ ३२५ ॥

कभी कभी कोमल भी कठिन हो जाता है, पर जो हित है, वह हठ कर के सहायक होता है, चाहें जैसा ही चोट पलक पर पहुँचे पर हाथ अपने ही ऊपर ओड़ता है ॥३२५॥

तुलसी बैर सनेह दोउ रहित बिलोचन चारि।
सुरा सेवरा आदरहिं निदरहिं सुरसरि बारि ॥ ३२६ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं—वैर और प्रीति ये दोनों भीतर और बाहर की चारों आँखों से रहित हैं, जैसे नीच जन मदिरा का आदर और गंगा जल का निरादर करते हैं। भाव यह कि वैर और प्रेम यह रज और तम के बाहरी रूप हैं, बिना रज और तम को त्यागे ये सत्व रूप में स्थित नहीं हो सकते ॥ ३२६ ॥

रुचै माँगनेहि माँगिबो, तुलसी दानिहि दानु ।
आलस, अनख न आचरज, प्रेमपिहानी जानु ॥ ३२७ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जिसे माँगना अच्छा लगे वह माँगे ही अर्थात् वह दैन्य भाव पर ही स्थिर रहे, जिसके लिए देना सरल है उसके लिए दान ही अच्छा है, जो वैराग्य में दृढ़ हो गया है वह उसी पथ पर चले। भाव यह कि एक ही पथ पर रहे, उसमें आलस्य, अनख और आश्चर्य करना प्रेम पथ का अवरोधक है प्रेम पथ में रुकावट डालने वाला है ॥ ३२७ ॥

अमिय गारि गारेउ गरल गारि कीन्ह करतार ।
प्रेम बैर की जननि जुग जानहिं बुध न गँवार ॥ ३२८ ॥

अमृत को गार कर (मधुर वचन) और विष को गार कर (दुर्वचन) ब्रह्मा ने बनाया ये दोनों (मधुर वचन और दुर्वचन) प्रेम और वैर की जननी है अर्थात् कोमल वचन से प्रेम उत्पन्न होता है और कटु वचन से वैर इस बात को विद्वान जानते हैं पर मूर्ख नहीं। भाव यह कि मनुष्य को ऐसा वचन कभी न बोलना चाहिए जिससे किसी को कष्ट न पहुँचे ॥ ३२८ ॥

सदा न जे सुमिरित रहहिं मिलि न कहहिं प्रिय बैन ।
तेपै तिन्ह के जाहिं घर जिनके हिये न नैन ॥ ३२९ ॥

जो सदा स्मरण नहीं किया करता न मिलने पर प्रिय वचन ही बोलता है, ऐसों को मित्र समझकर वही उसके घर जाता है जिसके हृदय में नेत्र नहीं है अर्थात् ज्ञान चक्षु से रहित है ॥ ३२९ ॥

हित पुनीत सब स्वारथहि, अरि असुद्ध बिनु चाँड़ ।
निज मुख मानिक सम दसन, भूमि परेते हाड़ ॥ ३३० ॥

जब तक स्वार्थ, अपना मतलब सधता रहता है। तभी तक हित और पवित्र आदमी रहता है, पर बिना स्वार्थ के वह शत्रु और अशुद्ध हो जाता है। जैसे जब तक दाँत मुख में लगा रहता है तब तक मोति के समान रहता है, पर मुख से गिरते ही हड्डी हो जाता है ॥ ३३० ॥

माखी, काक, उलूक, बक, दादुर से भये लोग ।
भले ते सुक, पिक, मोर से, कोउ न प्रेम पथ जोग ॥ ३३१ ॥

मखी* कौआ† उल्लू‡ बगुला§ दादुर|| के समान जो बुरे हैं वे तो बुरे है ही पर जो सुग्गा¶ कोयल$ और मोर/ के समान भले हैं वे बुरे से भी बदतर हैं अतः प्रेम पथ के योग्य कोई नहीं है ॥ ३३१ ॥

हृदय कपट, बर बेष धरि, वचन कहैं गढ़ि छोलि ।
अब के लोग मयूर ज्यों, क्यों मिलिये मन खोलि ॥ ३३२ ॥

अब के लोग मयूर के समान हैं, जैसे मयूर का हृदय इतना कठोर होता है कि विष-धर सर्प को भी हजम कर जाता है वैसे ही अब के मनुष्यों का हृदय भी कपट पूर्ण हृदय है, जैसा मयूर का सुन्दर रंग है, वैसा ही वे भी सुन्दर वेष धारण करते हैं, जैसा मयूर मीठी वाणी बोलता है, वैसे ही वे भी चिकनी चुपड़ी बातें बोलते हैं, भला ऐसे लोगों से हृदय खोल कर कैसे मिला जाय ॥ ३३२ ॥

चरन चोंच लोचन रगौं, चलौ मराली चाल ।
छीर नीर बिवरन समय बक उघरत तेहि काल ॥ ३३३ ॥

चरण, चोंच, नेत्र और रंग भी समान ही है और हंस का चाल भी चलता है पर जल दूध बिलगाने के समय बक की कलई खुल जाती है ॥ ३३३ ॥

---

* मखी—चाहें कैसा ही सुन्दर खाद्य पदार्थ हो उस पर बैठ कर मक्खी उसे गंदा कर ही देती है, और फोड़े फुंसी पर बैठ कर उसमें भी विष पैदा कर उसे और ही बुरा कर देती है, वैसे ही दुर्जन अच्छे बात को भी बुरा बना कर मनोमालिन्य पैदा कर देते हैं, और किसी के दुःख में और भी दुःख पहुँचाने की कोशिश करते हैं।

†काक—कौआ बीट आदि खाता है, उसकी बोली कर्णकटु होती है, वह डरता रहता है, मरे की भी पहले आँख ही निकाल कर खाता है, दुष्ट गीधादि पक्षियों का साथ करता है, वैसे ही दुष्ट भी अभक्ष्याभक्ष्य भोजन करते हैं, बुरे वचन बोलते हैं, मित्र का भी नाश करने पर तत्पर रहते हैं, नीचातीनीच जन का साथ करते हैं।

‡उल्लूक—सर्वोपकारक सूर्य देव को देख उल्लू द्वेष करता है, वह किसी कोटर में छिपा रहता है, अँधकार में प्रसन्न होता है वैसे ही दुर्जन किसी को उन्नति देख कर कुढ़ते हैं वह ज्ञान का प्रकाश नहीं चाहता है। वह अपनी ही तरह चाहता है कि सभी जीवन व्यतीत करे।

§बक—बगुला सदा शान्त भाव बैठा रहता है, पर मौका पाते ही छोटे जल जीवों को हड़प जाता है वैसे ही दुर्जन वाह्याडम्बर फैलाये रहते हैं, मौका पाकर दुर्बलों पर घात कर बैठते हैं।

||दादुर—मेढक वर्षाकाल में बकबक किया करता है, वैसे ही दुर्जन भी बकवाद किया करते हैं, कृतज्ञता भी प्रकाश नहीं करते।

¶शुक—इसकी जितनी सेवा की जाय, पर यह इतना बेमुरौत होता है कि मौका पाकर उड़ ही जाता है, कृतज्ञता नहीं मानता वही हाल भलों का भी है।

$कोयल—मधुर भाषी होती है, पर कीट आदि की भक्षण करती है।

/मोर—बड़ा सुन्दर होता है, मधुर बोलता है, पर सर्प को भी खा जाता है।

मिलै जो सरलहि सरल है, कुटिल न सहज बिहाइ ।
सो सहेतु, ज्यों वक्रगति व्याल न बिलै समाइ ॥ ३३४ ॥

यदि दुर्जन सज्जन से सरल हो कर मिले तो उसकी कुटिलता नहीं चली जाती, इसका भी कारण है जैसे सर्प टेढ़ा चलता है पर विल में सीधे प्रवेश करता है, वैसे ही दुर्जन सज्जन मण्डली में प्रवेश पाने ही के लिए सरलता दर्शाते हैं ॥ ३३४ ॥

कृसधन सखहि न देव दुख, मुयहु न माँगब नीच ।
तुलसी सजन की रहनि पावक पानी बीच ॥ ३३५ ॥

दरिद्र मित्र को दुःख न देना चाहिए और नीच से मरने पर भी माँगना न चाहिये, तुलसीदास जी कहते हैं कि सज्जनों की रहनि ऐसी होती जैसे पानी और आग की ॥ ३३५ ॥

संग सरल कुटिलहि भये हरि हर करहिं निबाहु ।
ग्रह गनती गनि चतुर विधि कियो उदर-बिनु राहु ॥ ३३६ ॥

सज्जन और दुर्जन के संग का निर्वाह विष्णु और शिव ही निबाहें तो निबह सकता है, ग्रहों में गणना करके चतुर विधाता ने राहु को बिना पेट के किया । एक तो राहु योंही दुष्ट ग्रह है, यदि पेट होता तो न मालूम क्या करता ॥ ३३६ ॥

नीच निचाई नहिं तजै सज्जन हू के संग ।
तुलसी चंदन विटप बसि बिनु विष भये न भुअंग ॥ ३३७ ॥

सज्जनों के साथ में रह कर भी नीच अपनी नीचता को नहीं छोड़ता । तुलसीदास जी कहते हैं कि सर्प चन्दन के वृक्ष पर रह कर भी अपना विष नहीं छोड़ता ॥ ३३७ ॥

भलो भलाई पै लहै, लहै निचाई नीचु ।
सुधा सराहिय अमरता गरल सराहिय मीचु ॥ ३३८ ॥

भले अपनी भलाई के लिये ही प्रसिद्ध हैं और नीच अपनी नीचाई के लिए ही । जैसे अमृत की प्रशंसा अमरता देने ही में है और विष का प्राण लेने ही में ॥ ३३८ ॥

मिथ्या माहुर सज्जनहि, खलहि गरल सम साँच ।
तुलसी छुवत पराइ ज्यों पारद पावक-आँच ॥ ३३९ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं सज्जन असत्य को और दुर्जन सत्य को विष के समान त्याग देते हैं जैसे पारा अग्नि के आँच से उड़ जाता है ॥ ३३९ ॥

संत-संग अपवर्ग कर, कामी भव कर पंथ।
कहहिं साधु कवि कोविद स्रुति पुरान सदग्रंथ ॥ ३४० ॥

संतों का संग मोक्ष का देने वाला और कामी का साथ आवागमन का देने वाला होता है। यह शास्त्र वेद पुराण सम्मत बात साधु कवि और पण्डित जन कहते हैं ॥३४०॥

सुकृत न सुकृती परिहरै, कपट न कपटी नीच।
मरत सिखावन देइ चले गीध राज मारीच ॥ ३४१ ॥

जो पुण्यात्मा हैं, वे पुण्य कर्म को और नीच कपटी कपट को नहीं त्यागते। इसकी शिक्षा मरते समय गृध्रराज और मारीच दे गये। अर्थात् गीध पुण्यत्मा थे अतः उन्होंने परोपकार में, सीता को रावण से बचाने ही में प्राण त्यागा। नीच मारीच कपटी था अतः वह कपट रूप धर सीता हरण में सहायता देकर ही मरा। अतः इन दोनों की मृत्यु से इस बात की शिक्षा मिलती है, कि पुण्यात्मा प्राण विसर्जन करके पुण्य कर्म ही करते हैं और नीच छली मरते दम तक छल कपट ही किया करते हैं ॥ ३४१ ॥

सुजन, सुतरु, बन, ऊष सम खल टंकिका रुखान।
परहित अनहित लागि सब साँसति सहत समान ॥ ३४२ ॥

सज्जन सुन्दर वृक्ष, कपास और ऊख के समान और दुर्जन टाँकी और रुखानी के समान होते हैं। दूसरे की भलाई और बुराई के लिये सब समान रूप से दुःख पाते हैं। भाव यह कि जैसे सुन्दर वृक्ष चन्दन आदि, कपास, रुई, ये दूसरे के लाभ ही के लिए काटे जाते हैं वैसे ही सज्जन परोपकार के लिए ही दुःख उठाते हैं। टाँकी और छेनी, दूसरे को काटते हैं इस लिए आग में तपाये जाते, पीटे जाते हैं वैसे ही दुर्जन दूसरे की बुराई ही किया करते हैं, इस लिए कष्ट उठाते हैं ॥ ३४२ ॥

पियहिं सुमनरस अलि विटप, काटि कोल फल खात।
तुलसी तरुजीवी जुगल, सुमति कुमति की बात ॥ ३४३ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि भौंरे वृक्षों के पुष्पों के रसपान करते हैं और कोल फल खाते हैं और वृक्ष को काटते हैं, दोनों ही वृक्ष जीवी हैं, अच्छी बुद्धि और बुरी बुद्धि का फेर है ॥ ३४३ ॥

अवसर कौड़ी जो चुकै बहुरि दिये का लाख।
दुइज न चंदा देखिये उदौ कहा भरि पाख ॥ ३४४ ॥

समय पर एक कौड़ी देना ही बहुत है, और समय चूकने पर लाख देने ही से क्या लाभ ? जैसे द्वितीया को चन्द्रमा न देख पड़ने पर पक्ष भर कहाँ से दिखाई पड़ेगा ॥ ३४४ ॥

ज्ञान अनभले को सबहि, भले भलेहू काउ ।
सींग, सूँड़, रद, लूम, नख करत जीव जड़ घाउ ॥ ३४५ ॥

अनभल करने का सभी को ज्ञान रहता है, पर भला करने का किसी सज्जन ही को होता है। सींग, सूँड, दाँत, पूँछ, नख इनमें से एक भी किसी जीव के पास हो तो वह दूसरे जीव को घायल ही करता है ॥ ३४५ ॥

तुलसी जगजीवन अहित, कतहुँ कोउ हित जानि ।
सोषक भानु कृषानु महि पवन, एक घनदानि ॥ ३४६ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि संसार के जीवों का अनहित करने वाले बहुत हैं, पर हित करने वाला कहीं कोई एकाध ही है। संसार को जीवनदान देने वाला एक मेघ ही है, पर सोखने वाले सूर्य, अग्नि, वायु सभी हैं ॥ ३४६ ॥

सुनिय सुधा देखिय गरल, सब करतूति कराल ।
जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत मराल ॥ ३४७ ॥

सुनने में तो अमृत आता है, पर देखने में विष ही और सभी बातें विकराल ही हैं, राजहंस केवल मान सरोवर ही पर मिलता है, पर काक उलू, बक जहाँ तहाँ सर्वत्र ही मिलते हैं। अर्थात् सज्जन विरले ही हैं, पर दुर्जनों की भरमार है ॥ ३४७ ॥

जलचर, थलचर, गगनचर, देव, दनुज, नर, नाग ।
उत्तम मध्यम अधम खल, दस गुन बढ़त विभाग ॥ ३४८ ॥

जलचर, थलचर, आकाशचारी, देवता, दनुज, मनुष्य, नाग आदि जीवों में उत्तम की संख्या एक है तो मध्यम की दस, अधम की सौ खल की हजार संख्या है, फिर सज्जन कहाँ से देख पड़ें ॥ ३४८ ॥

बलि मिस देखे देवता, कर मिस मानवदेव ।
मुए मार सुविचार-हत स्वारथ साधन एव ॥ ३४९ ॥

स्वार्थ का साधन यही है कि मरे को मारो, पाप पुण्य का विचार न करो क्योंकि देव दर्शन बलि चढ़ाने पर ही मिलता है, और राजा का दर्शन नजराना भेंट करने ही पर ॥ ३४९ ॥

सुजन कहत भल पोच पथ, पापि न परखै भेद।
करमनास सुर सरित मिस विधि निषेध बद वेद ॥ ३५० ॥

सज्जन जन पाप पुण्य के मार्ग को बताते हैं, पर पापी जन इसे नहीं परखते, वेद की विधि है कि गंगा जल छुओ निषेध है, कि कर्मनाशा का जल मत छुओ। पर इस भेद को पापी नहीं समझते ॥ ३५० ॥

मनि भाजन मधु, पारई पूरन श्रमी निहारि।
का छाँड़िय का संग्रहिय कहहु बिबेक बिचारि ॥ ३५१ ॥

मणि के पात्र में मद्य भरा है और सकोरे में अमृत, अब विवेक बुद्धि से कहो क्या ग्रहण करे और क्या त्यागे। भाव यह कि संसारी माया जाल मणि के पात्र में धरा शराब तुल्य है और श्रीराम कथा मिट्टी के पात्र में धरा अमृत तुल्य है अतः विवेक बुद्धि द्वारा सब से सम्बन्ध तोड़ निष्कपट भाव से श्रीराम ही का भजन करने में भलाई है ॥ ३५१ ॥

उतम मध्यम नीच गति पाहन, सिकता पानि।
प्रीति परिच्छा तिहुँन की, बैर बितिक्रम जानि ॥ ३५२ ॥

उत्तम जन की प्रीति पत्थर पर की लकीर के समान है, अमिट है, मध्यम की बालू पर की लकीर के समान है, क्षण स्थायी है, और नीच की पानी की लकीर के समान है, होने ही भर की है, इसके विपरीति वैर जानो अर्थात् सज्जन की वैर पानी की लकीर तुल्य है नहीं के बराबर है, मध्यम की बालू की लकीर के समान है क्षण स्थायी है, और नीच की पत्थर की लकीर के समान है अमिट है ॥ ३५२ ॥

पुन्य, प्रीति, पति, प्रापतिउ, परमारथ-पथ साँच।
कहहिं सुजन परिहरहिं खल, सुनहु सिखावन साँच ॥ ३५३ ॥

पुण्य, भगवान् में प्रेम, सम्मान, सत्संग की प्राप्ति, परमार्थ पथ यह सज्जन जन पाते हैं और दुर्जन त्यागते हैं, मेरी इस सच्ची शिक्षा को सुन लो ॥ ३५३ ॥

नीच निरादर ही सुखद, आदर सुखद बिसाल।
कदली बदली बिटप गति पेखहु पनस रसाल ॥ ३५४ ॥

नीच जन निरादर करने ही पर सुख देते हैं, और बड़े लोग सम्मान करने से सुख देते हैं जैसे केला और बेर काटने ही से बढ़ते और सुख देते हैं, कटहल और आम सींचने ही से बढ़ते और सुख देते हैं ॥ ३५४ ॥

तुलसी अपनो आचरन भलो न लागत कासु।
तेहि न बसात जो खात नित लहसुनहू को बासु ॥ ३५५ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि अपना आचरण किसको अच्छा नहीं लगता (सभी को) जो लहसून खाता है उसको वह कहाँ बसाता है ॥ ३५५ ॥

बुध सो विवेकी विमल मति जिनके रोष न राग।
सुहृद सराहत साधु जेहि तुलसी ताको भाग ॥ ३५६ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि पण्डित वही है, जो विवेकवान् है, जिसकी निर्मल बुद्धि है, जो रोष और राग से रहित है और वह बड़ा भाग्यवान् है जिसकी सराहना संत और मित्र करते हैं ॥ ३५६ ॥

आपु आपु कहँ सब भलो, अपने कहँ कोइ कोइ।
तुलसी सब कहँ जो भलो, सुजन सराहिय सोइ ॥ ३५७ ॥

स्वयं अपने लिए सभी भले हैं और अपना समझ कर भला करने वाले कोई कोई ही हैं। तुलसीदास जी कहते हैं सज्जन तो वही है जो सब के लिए भला है ॥३५७॥

तुलसी भलो सुसंग ते, पोच कुसंगति होइ।
नाउ, किन्नरी, तीर, असि लोह बिलोकहु लोइ ॥ ३५८ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि सुसंग से बुरा पदार्थ भी भला और बुरा संग से भला पदार्थ भी बुरा हो जाता है। हे लोगो! देखो, लोहा नाव में लग कर अथाह जल से लोगों को पार उतारता है और बीणा में लग कर लोगों का मनोविनोद करता है, पर वही तीर और तलवार में लग कर जीव हिंसा करता है ॥ ३५८ ॥

गुरु-संगति गुरु होइ सो, लघु-संगति लघु नाम।
चार पदारथ में गनैं नरकद्वारहू काम ॥ ३५९ ॥

बड़ों की संगति से बड़ा ही होता है और छोटों की संगति से छोटा। जैसे काम अर्थ, धर्म और मोक्ष के साथ में श्रेष्ठ माना जाता है, पर वही काम विषय संग में नरक का द्वार हो जाता है ॥ ३५९ ॥

तुलसी गुरु लघुता लहत लघु-संगति परिनाम।
देवी देव पुकारियत नीच नारि नर नाम ॥ ३६० ॥

तुलसीदास जी कहते हैं बड़े छोटे के संग से छोटा ही हो जाते हैं, जैसे देवी देवता का नाम (राम सीता, कृष्ण राधा आदि) पुरुष स्त्रियों का होने से उस नाम की छोटाई ही हो जाती है ॥ ३६० ॥

तुलसी किये कुसंग-थिति होहिं दाहिने बाम।
कहि सुनि सकुचिय सूम खल गत हरि-संकर-नाम ॥ ३६१ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि बुरे साथ से भला भी बुरा हो जाता है, कृपण और सूम का हरि या शंकर नाम होने पर उस नाम को कहने सुनने में लोग संकोच करते हैं ॥ ३६१ ॥

बसि कुसंग चह सुजनता ताकी आस निरास।
तीरथहू को नाम भो 'गया' मगह के पास ॥ ३६२ ॥

बुरे संग में बस कर जो सज्जनता की आशा करे वह निराशा मात्र ही है जैसे मगह के पास गया नाम का तीर्थ हुआ अर्थात् तीर्थ स्थान श्रेष्ठ होने पर भी उसका नाम गया (बीता) पड़ा ॥ ३६२ ॥

राम कृपा तुलसी सुलभ गंग सुसंग समान।
जो जल परै जो जल मिलै कीजै आपु समान ॥ ३६३ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि गंगा जी के जल के समान पवित्र सज्जन का संग श्रीरामचन्द्र जी की कृपा ही से मिलता है, जैसे गंगा में कोई भी जल पड़े वह पवित्र हो जाता है वैसे ही सज्जन का साथ कैसा ही आदमी करे वह भी सज्जन हो जाता है ॥ ३६३ ॥

ग्रह, भेषजु, जल, पवन, पट पाइ कुजोग सुजोग।
होइ कुवस्तु सुवस्तु जग, लखहिं सुलच्छन लोग ॥ ३६४ ॥

ग्रह, दवा, जल, वायु, तथा वस्त्र अच्छा या बुरा योग पा कर अच्छा या बुरा हो जाते हैं पर इसे बुद्धिमान जन ही जान पाते हैं ॥ ॥ ६४ ॥

चन्द्रमा शुभ ग्रह है, पर राहु आदि के साथ से बुरा फल देता है, शनि बुरा ग्रह है पर सूर्य आदि के संग से शुभ फल देता है, औषधि नियमित मात्रा में रोग हरती है, पर अधिक मात्रा में हानि पहुँचाती है, बहता जल स्वास्थ्य बढ़ाता है, पर बँधा जल रोग पैदा करता है। सुगंध सहित वायु के बहने से चित्त प्रसन्न होता है और दुर्गंधित वायु चित्त को खराब कर देता है।

जनम जोग में जानियत, जग विचित्र गति देखि।
तुलसी आखर, अंक, रस, रंग विभेद बिसेखि॥ ३६५॥

जन्म के योग से विचार कर देखा जाता है कि (इस बालक की) संसार में किधर प्रवृत्ति है अर्थात् इसे क्या सुख और क्या दुःख मिलेगा, इसका भाव क्या होगा। तुलसीदास जी कहते हैं कि एक ग्रह का दूसरे ग्रह के संयोग होने से सुख दुःख और जीवन में अन्तर पड़ जाता है।

भाव यह कि ग्रहादि वही रहते हैं पर उनका जैसा संयोग होता है वैसा ही फल होता है, बुरे ग्रह भले और भले ग्रह बुरे स्थान भेद से हो जाते हैं॥ ३६५॥

आखर जोरि बिचारि करु, सुमति अंक लिखि लेखु।
जोग-कुजोग-सुजोग-मय जगगति समुझि बिसेखु॥ ३६६॥

अक्षरों के जोड़ कर विचार करो, (नष्ट कुण्डली बनाने के लिए नाम का अक्षर जोड़ा जाता है) सावधानी से अंक एक दो जो कुण्डली में रहते हैं यथा स्थान रखो, भले बुरे ग्रहों को विचार कर संसार की बुरी अच्छी गति के समझो। अर्थात् अच्छे ज्योतिषि अपनी बुद्धि से योग लग्नादि अङ्कों को जोड़ कर शुभ स्थान में कितने ग्रह हैं और अशुभ स्थान में कितने हैं, ऐसा विचार भविष्य फल का निर्णय करते हैं। भाव यह कि इस संसार में तीन तरह के सम्बन्ध हैं, पहला साधारण सम्बन्ध अर्थात् ऐसों के साथ सम्बन्ध है जिनसे न तो कुछ हानि हो सकती है न लाभ, दूसरा बुरा संग जिससे सब प्रकार की हानि ही हानि होती है तीसरा सत्संग जिसकी महिमा अपरम्पार है। अतः अपना भविष्य निश्चय करने के लिए यह देख लो कि कैसे लोगों का साथ है, जैसा साथ हो वैसा निश्चय कर लो॥ ३६६॥

करु बिचार, चलु सुपथ, भल आदि मध्य परिनाम।
उलटे जपे जरा मरा सूधे राजा राम॥ ३६७॥

महाराज श्रीरामचन्द्र जी का नाम उलटा जपने से जरा मरा (बुढाई और मौत) होता है और सीधे जपने से राजा राम (सब कामनाओं का पूर्ण करने वाला) होता है, अतः विचार कर सुमार्ग में चल, जिसे आदि, मध्य और अन्त में भला हो॥ ३६७॥

होइ भले के अनभलो, होइ दानि के सूम।
होइ कुपूत सुपूत के, ज्यों पावक में धूम॥ ३६८॥

जैसे अग्नि में धूआँ होता है वैसे ही भले के बुरे, दानी के सूम और सुपुत्र के कुपुत्र होता है ॥ ३६८ ॥

जड़ चेतन गुन-दोष-मय बिस्व कीन्ह करतार ।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि वारि-विकार ॥ ३५६ ॥

जड़ चेतन, गुण दोष मय संसार की रचना विधना ने की है । इस त्रिगुणमयी संसार में संतजन दुर्गुणों को त्याग सद्‌गुणों को उसी प्रकार ग्रहण करते हैं जैसे हंस जल से दूध को ग्रहण करता है ॥ ३६९ ॥

सोरठा

पाट कीट तें होइ, ताते पाटंबर रुचिर ।
कृमि पालै सब कोइ परम अपावन प्रान सम ॥ ३७० ॥

रेशम कीड़े से होता है जिससे सुन्दर पीताम्बर बनता है । अतः अत्यन्त अपवित्र कीट को लोग प्राण के समान पालते हैं । भाव यह की गुण का ही आदर होता है, कुल वंश आदि का नहीं, भगवद्‌भक्त चाहें कोई भी जाति का हो वह मान्य है ॥ ३७० ॥

दोहा

जो जो जेहि जेहि रस मगन तहँ सो मुदित मन मानि ।
रसगुन-दोष बिचारिबो रसिकरीति पहिचानि ॥ ३७१ ॥

जो जिस रस में मग्न है, वह उसी में प्रसन्न रहता है, रसिक की रीति को पहचान कर इसका गुण दोष विचार किया जाता है । भाव यह कि सज्जन सत्संग में ही और दुर्जन दुष्ट संग में ही अपनी रुचि के अनुसार मग्न रहते हैं ॥ ३७१ ॥

सम प्रकास तम पाख दुहुँ, नाम भेद विधि कीन्ह ।
ससि पोषक सोषक समुझि जग जस अपजस दीन्ह ॥ ३७२ ॥

दोनों पक्षों में प्रकाश और अँधकार बराबर होता है, ब्रह्मा ने केवल नाम में भेद कर दिया अर्थात् एक का शुक्ल पक्ष और दूसरे का कृष्ण पक्ष । शुक्ल पक्ष चन्द्रमा का पोषक अर्थात् शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा की कलाएँ बढ़ती हैं, और कृष्ण पक्ष सोषक अर्थात् कृष्ण पक्ष में चन्द्रकलाओं की हानि होती हैं, इससे एक (शुक्ल पक्ष) को यश और एक (कृष्ण पक्ष को) अपयश मिला । भाव यह कि सत्कीर्ति से मनुष्य की ख्याति और दुष्कृति से बदनामी होती है ॥ ३७२ ॥

लोक वेदहूँ लौं दगो नाम भले को पोच।
धर्मराज जम, गाज पवि कहत सकोच न सोच ॥ ३७३ ॥

लोक वेद में प्रसिद्ध है कि भले का नाम बुरा होता है। जैसे धर्मराज को यमराज और इन्द्र के अस्त्र वज्र को गाज (जिसके गिरने से आदमी मरता है) कहने में कोई सोच या सँकोच नहीं करता॥ ३७३ ॥

विरुचि परखिये सुजन जन, राखि परखिये मंद।
बड़वानल सोषत उदधि, हरष बढ़ावत चंद ॥ ३७४ ।

सज्जन की दूर ही से परख होती है, और दूरजन की पास रख कर। जैसे दूर रहने वाला चन्द्रमा समुद्र की प्रसन्नता को बढ़ाता है और बड़वानल समुद्र में रह कर उसी के जल को सोखता है, वैसे ही सज्जन तो अलग रह कर भलाई ही करते हैं और दुर्जन पास रह कर भी बुराई ही करते हैं॥ ३७४ ॥

प्रभु सनमुख भये नीच नर निपट होत बिकराल।
रवि रुखि लखि दरपन फटिक उगिलत ज्वालाजाल ॥ ३७५ ॥

प्रभु ईश्वर के अनुकूल होने पर नीच मनुष्य बड़े ही भयंकर (अभिमानी) हो जाते हैं, जैसे स्फटिक मणि सूर्य के सामने होने पर ज्वालाएँ उगलने लगता है ॥३७५॥

प्रभु-समीप-गत सुजन जन होत सुखद सुबिचारि।
लवन-जलधि-जीवन जलद, बरषत सुधा सुवारि ॥ ३७६ ॥

प्रभु के समीप में रहने वाले सज्जन जन विचारवान और सब को सुख देने वाले होते हैं, जैसे मेघ खार समुद्र से अमृत तुल्य सुन्दर जल सब के कल्याणार्थ बरसता है ॥ ३७६ ॥

नीच निरावहिं निरस तरु, तुलसी सींचहिं ऊख।
पोषत पयद समान सब बिष पियूष के रूख ॥ ३७७ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि नीच मनुष्य निरस वृक्ष को निराकर ऊख को सींचते हैं, पर सज्जन जन मेघ के तुल्य विष (दुर्जन) अमृत (सज्जन) सब को समान रूप से पालन करते हैं। अर्थात् सज्जन भेद भाव नहीं रखते, सब पर निस्स्वार्थ कृपादृष्टि करते हैं ॥ ३७७ ॥

बरषि बिस्व हरषित करत, हरत ताप अघ प्यास ।
तुलसी दोष न जलद को जो जल जरै जवास ॥ ३७८ ॥

वर्ष कर संसार को प्रसन्न करता है और ताप, अघ, प्यास को नष्ट करता है, तुलसीदास जी कहते हैं कि यदि मेघ के जल से जवासा जल जाता है तो उसमें मेघ का क्या दोष । भाव यह कि दुर्जन का स्वभाव ही होता है कि वे अपनी भलाई करने वालों से भी जलते रहते हैं ॥ ३७८ ॥

अमरदानि, जाचक मरहिं, मरि मरि फिरि फिरि लेहिं ।
तुलसी जाचक पातकी दातहिं दूषन देहिं ॥ ३७९ ॥

दाता अमर है और मँगता मरा करते हैं, मर मर फिर फिर लेते हैं, मँगता पापी दाता ही को दोष दिया करते हैं, हमारी कुछ भी भलाई नहीं हुई अथवा महादानी शिव जी से लोग संसारी सुख माँगते हैं और समय पाकर फिर दूसरा जन्म लेते हैं फिर माँगते हैं, इस प्रकार आवागमन और माँगना उनका लगा रहता है, पर दोष देते हैं कि दानी शिव से हमारी कुछ भलाई नहीं हुई । (भलाई हो कैसे संसारी सुखों की अवहेलना कर शिव जी से श्रीराम की भक्ति का वरदान माँगे तब तो भलाई हो ॥ ३७९ ॥

लखि गयंद लै चलत भजि स्वान सुखानो हाड़ ।
गज-गुन, मोल, अहार, बल, महिमा जान की राड़ ॥ ३८० ॥

हाथी को देख कर कुत्ता सुखा हाड़ ले कर भागता है (कि कहीं वह छीन न ले) पर उस मूढ़ कुत्ते को हाथी का गुण, मोल, अहार, बल और महिमा मालूम नहीं । अर्थात् दुर्जन सदा सब से सशंक चित्त रहते हैं ॥ ३८० ॥

कै निदरहु कै आदरहु सिंहहि स्वान सियार ।
हरष बिषाद न केसरिहिं कुंजर-गंजनिहार ॥ ३८१ ॥

सिंह को चाहे स्यार कुत्ते आदर करें या निरादर इससे क्या ? हाथियों का समूह देख कर सिंह को न तो हरष होता है न विषाद । जिन्हें आत्माभिमान है वे नीचों के आदर निरादर को कुछ नहीं समझते हैं ॥ ८८१ ॥

ठाढ़ो द्वार न दै सकैं तुलसी जे नर नीच ।
निंदहिं बलि हरिचंद को का कियो करन दधीच ॥ ३८२ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि द्वार पर खड़े मँगते को (एक टूक रोटी) नीच मनुष्य नहीं दे सकते पर बलि, हरिचन्द्र, कर्ण दधीचि ने क्या किया इस बात की निन्दा करते हैं। नीच स्वयं तो किसी की भलाई कर नहीं सकते पर परोपकारी की निन्दा ही किया करते हैं॥ ३८२॥

ईस-सीस बिलसत बिमल, तुलसी तरल तरंग।
स्वान सरावग के कहे लघुता लहै न गंग॥ ३८३॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि गङ्गा का निर्मल तरंग शिव जी के सिर पर विलस रहा है, नीच कुत्ते के कहने से क्या गङ्गा की महिमा घट जायगी॥ ३८३॥

तुलसी देवल देव को लागे लाख करोरि।
काक अभागे हगि भरयो महिमा भई कि थोरि॥ ३८४॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि देवताओं के मन्दिर बनवाने में करोड़ों लाखों रुपये लग जाते हैं, उस पर यदि काक हग मारा तो क्या उसकी महिमा घट गयी। भाव यह कि म्लेछों के छूने से देवता की महिमा नहीं घट जाती॥ ३८४॥

निज गुन घटत न नागनग परखि परिहरत कोल।
तुलसी प्रभु भूषन किये गुंजा बढ़े न मोल॥ ३८५॥

गजमुक्ता या सर्प की मणि को देख कर यदि कोल उसे छोड़ दे तो इससे उसकी महिमा नहीं घटती और प्रभु भगवान् गुँजे का गहना पहनें तो इससे गुंजे का मूल्य बढ़ नहीं जाता। भाव यह कि दुर्जनों के अपमान से सज्जनों की महिमा नहीं घट जाती और नीच बड़ों के आदर से सुधरते नहीं तथा बड़पन नहीं पाते॥ ३८५॥

राकापति षोड़स उवहिं, तारागन समुदाइ।
सकल गिरिन दव लाइये बिनु रवि राति न जाइ॥ ३८६॥

चाहें चन्द्रमा सोलहों कलाओं से तथा ताराओं के समुदाय सहित उदय क्यों न हों, सब पर्वतों पर अग्नि क्यों जलाया जाय पर बिना सूर्योदय रात्रि नहीं जा सकती। भाव यह है कि बिना श्रीराम भजन के हृदय का अँधकार दूर नहीं हो सकता॥ ३८६॥

भलो कहे बिनु जानेहू, बिनु जाने अपवाद।
ते नर गादुर जानि जिय करिय न हरष विषाद॥ ३८७॥

वह मनुष्य मेढ़क के समान है, उसके कहने का मन में हर्ष विषाद न लावे जो बिना जाने भली या बुरी बात कहे ॥ ३८७ ॥

पर सुख सम्पति देखि सुनि जरहिं जे जड़ बिनु आगि ।
तुलसी तिनके भाग ते चलै भलाई भागि ॥ ३८८ ॥

जो मूर्ख दूसरों के सुख सम्पत्ति को देख सुन कर बिना अग्नि के ही जलते हैं, उनके भाग से भलाई भाग जाती है। अर्थात् दूसरों की बढ़ती न देख सकने वालों की बढ़ती नहीं हो सकती ॥ ३८८ ॥

तुलसी जे कीरति चहहिं पर की कीरति खोइ ।
तिनके मुँह मसि लागि हैं, मिटिहि न मरिहैं धोइ ॥ ३८९ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं—जो दूसरों की कीर्ति नष्ट कर स्वयं कीर्तिमान होना चाहते हैं। उनके मुँह में ऐसा कालिख पुत जाता है कि मरने पर भी धोने से नहीं मिटता ॥ ३८९ ॥

तनु, गुन, धन, महिमा, धरम, तेहि बिनु जेहि अभिमान ।
तुलसी जियत बिडंबना, परिनामहु गत जान ॥ ३९० ॥

तन (सुन्दर शरीर) गुण, धन, महिमा, धर्म आदि के बिना जो अभिमान करता है, उसकी जीते जी तो बदनामी होती है ही मरने पर भी वह बुरी गति को प्राप्त होता है ॥ ३९० ॥

सासु, ससुर, गुरु, मातु, पितु, प्रभु भयो चहै सब कोइ ।
होनो दूजो ओर को सुजन सराहिय सोइ ॥ ३९१ ॥

सास, ससुर, गुरु, माता, पिता, स्वामी, सभी होना चाहते हैं पर दूसरी ओर (बहू, बेटा, शिष्य) जो होना चाहे वही सज्जन है, भाव यह कि जो अपने को छोटा समझे वही सज्जन है ॥ ३९१ ॥

सठ सहि साँसति पति लहत, सुजन कलेस न काय ।
गढ़ि गुढ़ि पाहन पूजिये, गंडकि-सिला सुभाय ॥ ३९२ ॥

जैसे पथल गढ़ छोल कर पूजा जाता है, पर गंडकी नदी का पथल स्वभाव ही से (सालिग्राम के रूप का होता है) पूजा जाता है, वैसे ही दुर्जन दुःख सहके प्रतिष्ठा पाते हैं और सज्जन बिना क्लेश ही ॥ ३९२ ॥

बड़े बिबुध-दरबार तें भूमि-भूप-दरबार।
जापक पूजक पेखियत, सहत निरादर भार॥ ३९३॥

बड़े बड़े देवताओं के दरबार से साधारण राजाओं के दरबार तक जापक और पूजक अपमान के भार को सहते हुए देखे जाते हैं। भाव यह कि इनको प्रसन्न करने में कष्ट अधिक उठाना पड़ता है और फल न्यून ही मिलता है, पर श्रीरामचन्द्र जी केवल नाम लेने से ही सद्गति देते हैं॥ ३९३॥

बिनु प्रपञ्च छल भीख भलि, लहिय न दिये कलेस।
बामन बलि सों छल कियो, दियो उचित उपदेस॥ ३९४॥

बिना छल कपट के भीख भी अच्छी है, जो बिना कष्ट दिये ही मिल जाय। इसका उचित उपदेश वामन भगवान् ने बलि से छल करके दिया है। भगवान् ने वामन रूप धर बलि से तीन पग पृथ्वी भीख माँगी, पर विराट रूप धर कर बलि को छल लिया, इस कारण उनको बलि का पाताल लोक में दरबान होना पड़ा। अतः भीख माँगना भी निश्छल ही भली है, उसमें भी कष्ट भोगना पड़ता है, अतः छली को कहीं ठौर नहीं॥ ३९४॥

भलो भले सों छल किये जनम कनौड़ो होइ।
श्रीपति सिर तुलसी लसति, बलि-बावन गति सोइ॥ ३९५॥

यदि भले लोग भलों से छल करते हैं, तो वह जन्म भर उसका ऋणिया रहते हैं। जैसे भगवान् ने वृन्दा* से छल किया तो वह तुलसी होकर सदा उनके सिर पर रहती है और वामन ने बलि से छल किया तो बलि के वे दरबान बने॥ ३९५॥

बिबुध-काज बावन बलिहि छलो, भलो जिय जानि।
प्रभुता तजि बस भे, तदपि मन की गइ न गलानि॥ ३९६॥

देवताओं का काम जान कर कि वह अच्छा काम है, वामन ने बलि को छला, जिसके कारण स्वामीत्व छोड़ कर भगवान् को बलि के वश में होना पड़ा इस बात की ग्लानि उनके हृदय में बनि रही॥ ३९६॥

---

* वृन्दा जालन्धर नामक दैत्य की स्त्री थी। यह बड़ी ही पतिव्रता थी। इसके प्रभाव से जालन्धर को कोई मार नहीं सकता था। जब शिव जी से उसका युद्ध हो रहा था तब विष्णु ने इसका पातिव्रत खण्डित किया। इसी कारण वृन्दा तुलसी के रूप में आज भी विष्णु के सिर पर चढ़ायी जाती है।

सरल-बक्रगति पंच ग्रह, चपरि न चितवत काहु ।
तुलसी सूधे सूर ससि, समय बिडंबित राहु ॥ ३६७ ॥

मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि ये पाचों ग्रहों की सरल और टेढ़ी चाल है, अतः सहसा कोई भी ग्रह इनकी ओर नहीं देखते, पर सूर्य और चन्द्रमा की सीधी चाल हैं, अतः समय पा कर राहु इनको बाधा पहुँचाता है, भाव यह की टेढ़े से सभी डरते हैं ॥ ३९७ ॥

खल-उपकार बिकार-फल तुलसी जान जहान ।
मेढुक मर्कट बनिक बक कथा सत्य-उपखान ॥ ३६८ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि खल के साथ उपकार करने पर भी बुरा ही फल होता है, यह बात जहान जानता है । सत्योपाख्यान में मेढ़क* बन्दर† बनिया‡ और बक§ की कथा वर्तमान ही है ॥ ३९८ ॥

तुलसी खल-बानी मधुर सुनि समुझिय हिय हेरि ।
रामराज बाधक भई मूढ मंथरा चेरि ॥ ३६६ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं—दुष्टों की मधुर वाणी मन में अच्छी तरह विचार कर सुनना चाहिए क्योंकि मूर्खा दासी मन्थरा ने राम राज के बाधक हुई (उसने अपने मधुर वचनों में रानी कैकेयी को बहका लिया और राम को वनवास दिया, जिसके कारण, कैकेयी स्वयं विधवा हुई, उसका पुत्र भरत कष्ट उठाये, यदि वह मन्थरा की बातें समझती तो ऐसा कभी न होता) ॥ ३९९ ॥

जोक सूधिमन कुटिल गति, खल बिपरीत बिचारु ।
अनहित सोनित सोष सो, सोहित सोषनहारु ॥ ४०० ॥

---

* एक मेढ़क ने अपने भाई बन्धुओं से नाराज़ होकर एक सर्प को बुला लाया । उस सर्प ने उसके जाति बिरादरों को खाकर अखीर उसे भी चट कर गया ।

† एक राजा ने अपनी रक्षा के लिए एक बन्दर पाला । वह बन्दर उसकी रानी से ही फंस गया ।

‡ एक बनिये ने अपनी स्त्री को राजकुमार की सहायतार्थ भेजा । वह राजकुमार उसी पर विषयासक्त हो गया ।

§ एक बक ने एक ब्राह्मण को धन का खजाना दिखला दिया, ब्राह्मण ने उस बक को ही मार डाला ।

जोक की चाल टेढ़ी है पर उसका मन सीधा है, पर दुष्ट को इसके विपरीत समझो अर्थात् दुष्ट की चाल सीधा पर मन का वह टेढ़ा होता है, अतः जोक तो विकार युक्त रक्त को चूसता है पर दुर्जन हितकारी रक्त को ही चूसता है ॥ ४०० ॥

नीच गुडी ज्यों जानिबो, सुनि लखि तुलसीदास ।
ढील दिये गिरि परत महि, खैंचत चढ़त अकास ॥ ४०१ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं, सुन कर और देख कर नीच को पतंग के समान जानो । जैसे पतंग खींचने पर तो आकाश में चढ़ जाती है, पर ढील देने पर गिर पड़ती है, वैसे ही दुर्जन आदर करने से तो सिर पर चढ़ जाते हैं, पर तिरस्कार करने से दबे रहते हैं ॥ ४०१ ॥

भरदर बरसत कोससत बचैं जे बूँद बराइ ।
तुलसी तेउ खल-बचन सर हये, गयें न पराइ ॥ ४०२ ॥

सौ कोश तक लगातार पानी बरसते में जाता हुआ मनुष्य जल की बूँद से भले ही बच जाय पर दुर्जनों के बचन रूपी बाण से भागने पर भी नहीं बच सकता ॥ ४०२ ॥

पेरत कोल्हू मेलि तिल तिली सनेही जानि ।
देखि प्रीति की रीति यह, अब देखिबी रिसानि ॥ ४०३ ॥

तिल को अपना प्यारा जान कर तेली उसे कोल्हू में डाल कर पेरता है, प्रीति की रीति यह देखी गयी अब देखना यह है कि तेली नाराज होकर तिल के साथ क्या करता है, भाव यह कि दुर्जन अपने प्रेमी जान कर भी उसे पेरे डालते हैं, यदि वे अप्रसन्न हों तो क्या करें भगवान् ही जानें ॥ ४०३ ॥

सहवासी काचो गिलहि, पुरजन पाक प्रवीन ।
कालछेप केहि मिलि करहिं तुलसी खग मृग मीन ॥ ४०४ ॥

साथ रहने वाले एक जीव दूसरे को कच्चा ही खा जाते हैं और नगर निवासी पका कर खाते हैं, तुलसीदास जी कहते हैं, पक्षी, पशु और मछली किसके साथ रह कर समय बितावें ॥ ४०४ ॥

जासु भरोसो सोइये राखि गोद में सीस ।
तुलसी तासु कुचाल ते रखवारो जगदीस ॥ ४०५ ॥

ऊपर के दोहे का उत्तर है, जिसके भरोसे उसकी गोद में सिर रख जो सोता है, उसकी रक्षा उसके कुचाले से भगवान् करते हैं ॥ ४०५ ॥

मार खोज लै सौंह करि, करि मत, लाज न त्रास।
मुये नीच ते मीच बिनु जे इनके बिस्वास ॥ ४०६ ॥

जो आदमी किसी को ढूँढ कर, न मारने की शपथ करके मारते हैं, अपने कृत्य का न उसे लज्जा है न डर है, उसका जो विश्वास करता है, वह नीच बिना मौत के ही मरता है ॥ ४०६ ॥

परद्रोही, परदार-रत, परधन, पर-अपवाद।
ते नर पाँवर पाप मय देह धरे मनुजाद ॥ ४०७ ॥

दूसरों से द्रोह करने वाले, परायी स्त्री में आसक्त, पर धन हरण करने वाले, दूसरे की निन्दा करने वाले मनुष्य नीच पाप रूपी देह धारी राक्षस हैं ॥ ४०७ ॥

बचन बेष क्यों जानिये मन मलीन नर नारि।
सूपनखा, मृग, पूतना, दसमुख प्रमुख बिचारि ॥ ४०८ ॥

सूपनखा (सुन्दर स्त्री का रूप धर कर श्रीरामचन्द्र जी के पास आयी पर वह काम के वश थी,) मृग (मारीच सुन्दर मृग का रूप धर कर आया, पर सीता हरण में दुष्ट रावण को सहायता देने के लिए) पूतना (सुन्दर युवती का रूप धर श्री कृष्ण को विष पिला मारने ही आयी) रावण (संन्यासी का रूप धर सीता हरने आया) अतः बचन और वेश से दुष्ट मन वाले स्त्री पुरुष को कोई कैसे जान सकता है ॥ ४०८ ॥

हँसनि, मिलनि, बोलनि मधुर, कटु करतब मन माँह।
छुवत जो सकुचै सुमति सो तुलसी तिन्ह की छाँह ॥ ४०९ ॥

हँसना, मिलना, बोलना, जिनका मधुर है, पर उनके मन में बुरी करनी है ऐसे मनुष्य की छाया छूने में जो सकुचै वही बुद्धिमान् है ॥ ४०९ ॥

कपटसार सूची सहस, बाँधि बचन-परवास।
कियो दुराउ चहै चातुरी सो सठ तुलसीदास ॥ ४१० ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि कपट रूपी लोहे के सहस्रों सूइयों को वचन रूपी प्रबंध में बाँध कर चतुरता से जो छिपाना चाहे वह मूर्ख है ॥ ४१० ॥

बचन बिचार आचार तन, मन, करतब छल छूति।
तुलसी क्यों सुख पाइये अंतर्जामिहि धूति ॥ ४११ ॥

कोई विचार सहित वचन बोले और शरीर से आचार दिखावे, पर मन और कर्त्तव्य में छल और अपवित्रता भरा हो तो अन्तर्यामी भगवान् को धोखा देकर कैसे सुख पा सकता है ? ॥ ४११ ॥

सारदूल को स्वाँग कर, कूकर की करतूति ।
तुलसी तापर चाहिए कीरति बिजय बिभूति ॥ ४१२ ॥

सिंह का वेश रच कर कुते की करनी करे और उस पर कीर्ति, विजय और ऐश्वर्य चाहे तो कहाँ मिल सकता है ? भाव यह कि कपट वेश से ईश्वर नहीं मिलता ॥ ४१२ ॥

बड़े पाप बाढ़े किये, छोटे किये लजात ।
तुलसी तापर सुख चहत, बिधि सों बहुत रिसात ॥ ४१३ ॥

छोटे छोटे पापों को करने में तो लजाता है, पर बड़े पापों को करने में बढ़ता ही जाता है, इस पर सुख चाहता है, (सुख के बजाय दुःख मिलता है) तो ब्रह्मा पर क्रुद्ध होता है ॥ ४१३ ॥

देसकाल—करता—करम—वचन–बिचार–विहीन ।
ते सुरतरु-तर दारिदी, सुरसरी-तीर मलीन ॥ ४१४ ॥

जिसके कर्म देश काल कर्त्ता विहीन हैं, अर्थात् जिसके कर्म वेद विहीन कर्मानुसार, तीर्थादि में स्नान मुहूर्त लग्न पर्वानुसार नहीं होते कर्ता में वे लक्षण भी नहीं जो कर्म करने वाले में होने चाहिए, वह कल्प वृक्ष के नीचे भी दरिद्र ही बना रहता है और गङ्गा के तट पर भी मलिन अर्थात् पाप युक्त ही रहता है ॥ ४१४ ॥

साहसही, कै कोप बस किये कठिन परिपाक ।
सठ संकट भाजन भये हठि कुजाति कपि काक ॥ ४१५ ॥

उत्तेजना में आकर या क्रोध वश किये हुए कार्यों का परिणाम बुरा होता है। नीच जाति के वालि* और काक† हठ वश दुःख के पात्र हुए ॥ ४१५ ॥

* कपि वालि की तारा ने समझाया कि सुग्रीव से लड़ने मत जा क्योंकि उसके सहायक श्रीरामचन्द्र जी बड़े बलवान् हैं, उनसे वैर करना अच्छा नहीं पर वालि ने तारा की बातें नहीं मानी, जिसके कारण मारा गया।

†काक इन्द्र का पुत्र जयन्त बिना सोचे समझे श्रीरामचन्द्र के बल की परीक्षा के लिये सीता के चरणों में चोंच मारा, जिससे श्रीरामचन्द्र जी ने तीनके का बाण मारा। जयन्त तीनों लोकों में घूम आया कहीं शरण न मिली। अन्त में एक आँख का काना होकर प्राण बचा।

राज करत बिनु काजही करैं कुचालि कुसाज।
तुलसी ते दसकंध ज्यों जइहैं सहित समाज ॥ ४१६ ॥

राज करते हुए अकारण ही जो बुरी चालें चलता है और बुरा साज सजता है अर्थात् जो अत्याचारी और अन्यायी है वह रावण के समान समाज सहित मारा जाता है ॥ ४१६ ॥

राज करत बिनु काजही ठटहिं जे कूर कुठाट।
तुलसी ते कुरुराज ज्यों जइ हैं बारह बाट ॥ ४१७ ॥

राज्य करते हुए जो बिना काम के बुरी रचनाएँ रचेगा वह कौरवों के समान बारह बाट लगेगा, नाश को प्राप्त होगा ॥ ४१७ ॥

सभा सुजोधन की सकुनि, सुमति सराहन जोग।
द्रोन बिदुर भीषम हरिहि कहैं प्रपंची लोग ॥ ४१८ ॥

दुर्योधन की सभा में सकुनि की बुद्धि की ही प्रशंसा हुई और महात्मा विदुर, भीष्म, हरि श्रीकृष्ण भगवान् को लोग प्रपञ्ची ही कहते थे। अर्थात् दुष्टों की सभा में दुष्टों ही का आदर होता है सज्जनों का नहीं ॥ ४१८ ॥

पांडुसुवन की सदसि ते, नीको रिपु हित जानि।
हरि हर सम सब मानियत, मोह ज्ञान की बानि ॥ ४१९ ॥

पाण्डवों की सभा में यह लोग भली भाँति जानते थे कि द्रोण भीष्मादि से शत्रु की ही भलाई होगी, फिर भी विष्णु और शिव के समान उन्हें लोग जानते थे, इसका कारण मोह और ज्ञान है। अर्थात् युधिष्ठिर की सभा वालों में ज्ञान था इसलिए बुराई होने वालों को भी भला ही समझते थे और दुर्योधन की सभा में आज्ञान था इसलिए हितैषी को भी बुरा ही समझते थे ॥ ४१९ ॥

हित पर बढ़ै बिरोध जब, अनहित पर अनुराग।
राम बिमुख बिधि बामगति, सगुन अघाय अभाग ॥ ४२० ॥

जब अपने हितैषी पर विरोध बढ़ता है और अहितकारी पर प्रेम तब यह जानना चाहिए कि श्रीरामचन्द्र जी उसके प्रतिकूल हैं, ब्रह्मा की गति उलटी है, सगुन जो हैं वे अभाग्य में बदल जाते हैं। अर्थात् सब तरह से उसकी बुराई ही होती है ॥ ४२० ॥

सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख जो न करै सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हित हानि॥ ४२१॥

स्वाभाविक मित्र, गुरु, स्वामी की सीख को जो नहीं करता, वह पछता कर हृदय में तृप्त होता है और उसके हित की हानि अवश्य ही होती है॥ ४२१॥

भरुहाए नट भाँट के चपरि चढ़े संग्राम।
कै वै भाजे आइहैं, कै बाँधे परिनाम॥ ४२२॥

जो लोग नट या भाँट के बढ़ावें में सहसा संग्राम में चढ़ जाते हैं वे या तो युद्ध से भाग आते हैं या शत्रु के कैद में पड़ जाते हैं॥ ४२२॥

लोक रीति फूटि सहैं, आँजी सहै न कोइ।
तुलसी जो आँजी सहै सो आँधरो न होइ॥ ४२३॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि लोक की यह रीति है कि फूटी आँख सब सह लेते हैं, पर कड़ुवा आँजन नहीं सहते, यदि कड़ुवा आँजन सह लें तो अंधा न हों। भाव यह कि लोग विषय वासना में लिप्त रहते हैं, यही अच्छा लगता है, पर विषय त्याग उनको कड़ुवा लगता है जिससे अक्षय्य सुख मिलता है॥ ४२३॥

भागे भल, ओड़ेहु भलो, भलो न घाले घाउ।
तुलसी सब के सीस पर रखवारो रघुराउ॥ ४२४॥

भाग जाना भला है, किसी के वार को रोक लेना भी भला है, पर मारने पर मारना भला नहीं। क्योंकि सब के सिर पर रक्षक रघुनाथ जी हैं, भला दूसरा कौन किसी को मार या जिला सकता है॥ ४२४॥

सुमति बिचारहि, परिहरहिं दल-सुमनहु संग्राम।
सकुल गये तनु बिनु भये, साखी जादौ काम॥ ४२५॥

बुद्धिमान विचार कर पत्ति और पुष्प की भी लड़ाई त्याग देते हैं क्योंकि पत्ति से लड़ने वाले यादवों का और सुमन वाण छोड़ने वाले काम का नाश हो गया॥ ४२५॥

कलह न जानब छोट करि, कलह कठिन परिनाम।
लगति अगिन लघु नीच गृह जरत धनिक-धन धाम॥ ४२६॥

जैसे अग्नि छोटे से घर में लगने पर भी धनिकों का धन धाम भस्म कर देता है, वैसे ही कलह को तुच्छ न समझना चाहिए, इसका बहुत बुरा परिणाम होता है॥४२६॥

छमा रोष के दोष गुन सुनि मनु मानहिं सीख।
अविचल श्रीपति हरि भये भूसुर लहै न भीख ॥ ४२७ ॥

हे मन! क्षमा और क्रोध के दोष गुण सुन कर सीख मान ले क्षमा करने से विष्णु लक्ष्मी पति हुए और ब्राह्मण को भीख भी नहीं मिलता* ॥ ४२७ ॥

कौरव पांडव जानिये क्रोध छमा के सीम।
पांचहु मारि न सो सकै, सयो सँहारे भीम ॥ ४२८ ॥

कौरव के क्रोध और पाण्डवों के क्षमा की सीमा जाने जिसका फल यह हुआ कि क्षमावान पाँच पाण्डवों को क्रोधी सौ कौरव भी न मार सके पर उन सौ को एक भीम ने मार डाला ॥ ४२८ ॥

बोल न मोटे मारिये, मोटी रोटी मारु।
जानि सहस सम हारिबो, जीते हारि निहारु ॥ ४२९ ॥

किसी को कड़ी बात न कहो, बल्कि मोटी रोटी से मारो, आदर सम्मान करो, बातों की जीत को तो सौ सहस्र बार हारने के समान समझो। ऐसी जीत में अपनी हार ही समझो ॥ ४२९ ॥

जो परि पायँ मनाइये तासों रूठि बिचारि।
तुलसो तहाँ न जीतिये जहँ जीतेहू हारि ॥ ४३० ॥

जो पैर पर गिर के मनावे, उससे न रूठना चाहिए और जहाँ जीतने पर भी हार हो वहाँ न जीतना चाहिए ॥ ४३० ॥

जूझे तें भल बूझिबो, भली जीत तें हारि।
डहके तें डहकाइबो भलो, जो करिय बिचारि ॥ ४३१ ॥

यदि भली भाँति विचार कर देखो तो लड़ने से आपस में समझौता कर लेना अच्छा है, जीतने से हार जाना ही अच्छा है किसी को सताने से सताया जाना अच्छा है ॥ ४३१ ॥

जा रिपु सों हारेहु हँसी, जिते पाप परितापु।
तासों रारि निवारिये समय सँभारिय आपु ॥ ४३२ ॥

* भृगु ने विष्णु भगवान् को लात मारी, इस बात को विष्णु ने क्षमा कर दी जिसका फल यह हुआ कि उनको क्षमावान् जानकर लक्ष्मी उनकी सेवा करती है, भृगु ब्राह्मण ने क्रोध करके लात मारी जिसका फल यह हुआ कि ब्राह्मण घर घर मारे फिरते हैं, पर भीख भी नहीं मिलती।

जिस शत्रु से हारने पर हँसी और जितने पर पाप और पश्चात्ताप हो वैसे शत्रु से झगड़ा बचावे, यदि झगड़ा का मौका आवे तो भी समय पर अपने को सम्भाल ले ॥ ४३२ ॥

जो मधु मरे न मारिये माहुर देइ सो काउ।
जग जिनि हारे परसुधर, हारि जीते रघुराउ ॥ ४३३ ॥

जो मधु देने से मरे उसे भी न मारे, फिर जहर किस को दे (किसी को नहीं)। संसार को जीतने वाले परशुराम को श्री रघुनाथ ने हार कर जीता। अर्थात् परशुराम के क्रोध की मात्रा बढ़ती जाती थी और श्रीरामचन्द्र जी नम्र ही होते जाते थे, अन्त में क्रोध को नम्रता के सामने झुकना पड़ा, क्रोधी परशुराम श्रीराम की नम्रता से जीते गये ॥ ४३३ ॥

बैर-मूल-हर हित-बचन, प्रेममूल उपकार।
दो 'हा' सुभ-संदोह सो, तुलसी किये बिचार ॥ ४३४ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि मैंने विचार कर लिया कि बैर की जड़ को दूर करने वाला हितकारी वचन और प्रेम की जड़ मजबूत करने के लिए परोपकार है और दो 'हा' (हा हा) अर्थात् विनती करना सब कल्याणों की खान है ॥ ४३४ ॥

रोष न रसना खोलिये, बरु खोलिय तरवारि।
सुनत मधुर, परिनाम हित, बोलिय बचन बिचारि ॥ ४३५ ॥

क्रोध में बोलने की अपेक्षा तलवार खोलना अच्छा विचार कर ऐसा वचन बोले जो सुनने में मधुर हो और जिसका परिणाम हितकारी हो ॥ ४३५ ॥

मधुर बचन कटु बोलिबो, बिनु स्रम भाग अभाग।
कुहू कुहू कलकंठ रव, काका कररत काग ॥ ४३६ ॥

मधुर वचन बोलने से बिना परिश्रम से ही मनुष्य भाग्यवान होता है और कड़ुवे वचन बोलने से अभागा। जैसे कोयल के मीठे शब्द कुहू कुहू से सभी उसे चाहते हैं और काग के काँ काँ टर्राने से सभी उसे दूर भगाते हैं ॥ ४३६ ॥

पेट न फूलत बिनु कहे, कहत न लागै ढेर।
सुमति बिचारे बोलिये समुझि कुफेर सुफेर ॥ ४३७ ॥

वचन बोले बिना न तो पेट ही फूलता है और बोलने से न तो द्रव्य की ढेर ही लग जाती है, अतः भले और बुरे वचन के भले और बुरे परिणाम को सोच कर ही बुद्धिमान जन विचार पूर्वक बोलते हैं ॥ ४३७ ॥

छिद्यो न तरनि-कटाछ सर, करेउ न कठिन सनेहु ।
तुलसी तिनकी देह को जगत कवच करि लेहु ॥ ४३८ ॥

जिसका हृदय युवति के कटाक्षसर से विध न हुआ, जो कठिन मोह माया में नहीं फँसा, तुलसीदास जी कहते हैं कि उसको संसार का कवच (त्राण) समझ लो। अर्थात् ऐसे ही सन्तों की शरण में आने से मनुष्य भवसागर के पार होता है ॥ ४३८ ॥

सूर समर करनि करहिं, कहि न जनावहिं आपु ।
विद्यमान रन पाय रिपु कायर करहिं प्रलापु ॥ ४३९ ॥

वीर संग्राम में करनी कर दिखाते हैं, कह कर अपने को जाहिर नहीं करते। संग्राम में शत्रु को पा कर कादर ही बका करते हैं अर्थात् कामक्रोधादि शत्रुओं को शान्ति पूर्वक ही जीतना चाहिए ॥ ४३९ ॥

बचन कहे अभिमान के पारथ पेषत सेतु ।
प्रभुतिय लूटत नीच भर जय न, मीचु तेहि हेतु ॥ ४४० ॥

अर्जुन ने समुद्र में बंधे सेतु को देख कर अभिमान की बातें कहीं पर यादवों के नाश हो जाने और श्रीकृष्ण के परलोक वास होने पर द्वारिका से श्री कृष्ण की स्त्रियों को इन्द्रप्रस्थ ले जाते समय भिल्लों ने लूट लिया, पर उनको अर्जुन जीत न सके, इस कारण जिन्दे ही मरे के तुल्य हो गये ॥ ४४० ॥

राम लषन विजयी भये बनहु गरीबनिवाज ।
मुखर वालि रावन गये घर ही सहित समाज ॥ ४४१ ॥

दीन रक्षक श्रीराम और लक्ष्मण जी वनवासी होने पर भी विजयी हुए और अभिमानि वालि और रावण समाज सहित घर बैठे मारे गये ॥ ४४१ ॥

खग मृग मीत पुनीत किय, बनहु राम नयपाल ।
कुमति वालि दसकंठ घर सुहृद बंधु कियो काल ॥ ४४२ ॥

वन में नम्रजनों को पालने वाले श्रीरामचन्द्र जी पक्षी जटायु और वानरों को अपना मित्र बनाया और उन्हें पवित्र किया, पर दुर्बुद्धि वालि और रावण घर बैठे अपने मित्र भाई को शत्रु बनाया ॥ ४४२ ॥

लखै अघानो भूख ज्यों, लखै जीति में हारि ।
तुलसी सुमति सराहिए, मग पग धरैं बिचारि ॥ ४४३ ॥

भूखा रहने पर भी अपने को तृप्त समझें अर्थात् सन्तुष्ट रहे, जीत में भी अपनी
र समझे। जो नम्र हैं जो मार्ग में विचार कर पैर रखते हैं, अर्थात् जिनको
े बुरे का विचार है, वे ही बुद्धिमान हैं॥ ४४३ ॥

लाभ समय को पालिबो, हानि समय की चूक।
सदा बिचारहिं चारुमति सुदिन कुदिन दिन दूक॥ ४४४ ॥

जो अच्छी बुद्धि वाले हैं वे यही विचारते हैं कि अच्छे या बुरे दिन सदा नहीं
ते। यही विचार कर वे बढ़ती के समय सब को पालते हैं और गरीबी के समय
सी को नुकसान भी नहीं पहुँचाते॥ ४४४ ॥

सिंधुतरन कपि गिरिगहन काज साइँ हित दोउ।
तुलसी समयहि सब बड़ो, बूझत कहुँ कोउ कोउ॥ ४४५ ॥

हनुमान जी का समुद्र लाँघना और (संजीवनी लाने के समय) पर्वत को उखाड़
ना ये दोनों स्वामी की भलाई के काम थे। ये दोनों काम मौके से हुए इसी से
ाकी बड़ाई हुई। इस बात को (मौके पर काम करना) कोई कोई ही समझते
॥ ४४५ ॥

तुलसी मीठी अमी तें माँगी मिलै जो मीच।
सुधा सुधाकर समय बिनु कालकूट तें नीच॥ ४४६ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि समय पर माँगने से मौत मिल जाय तो अमृत से भी
ठी है। पर अमृत और अमृत के भण्डार चन्द्रमा असमय के हलाहल, जहर से भी
तर हैं। अर्थात् समय पर काम आने वाला ही श्रेयस्कर है॥ ४४६ ॥

तुलसी असमय के सखा धीरज, धरम, विवेक।
साहित, साहस, सत्यव्रत, राम-भरोसो एक॥ ४४७ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि असमय के मित्र धीरज, धर्म और विवेक हैं और
के सहायक साहस और सत्यव्रत है, पर केवल श्रीरामचन्द्र जी का भरोसा करने पर
न्य सहायक की आवश्यकता ही नहीं॥ ४४७ ॥

समरथ कोउ न राम सों, तीय-हरन अपराधु।
समयहि साधे काज सब, समय सराहहिं साधु॥ ४४८ ॥

उपरोक्त दोहे में कथित धैर्य आदि का उदाहरण गोस्वामी जी इस दोहे में देते हैं। श्रीरामचन्द्र जी के समान कोई सामर्थ्यवान नहीं है, स्त्री हरण के समान कोई अपराध नहीं। फिर भी श्रीरामचन्द्र जी ने धैर्य धर्म और विवेक सहित ही सब काम (रावण का नाश सीता का उद्धार आदि) किया। इस लिये सब सज्जन जन उनके कार्य की सराहना करते हैं॥ ४४८ ॥

तुलसी तीरहु के चले समय पाइबी थाह।
धाइ न जाइ थहाइबी सर सरिता अवगाह ॥ ४४९ ॥

नदी, तालाब आदि अथाह हैं उनके किनारे किनारे चलने ही से थाह मिलता है, दौड़ कर थाहने से उनका थाह नहीं मिलता। भाव यह कि संसार सागर अथाह है, इसमें विषय वासना का पारावार नहीं। अतः विषयवासना से अलग रह कर ही इस सागर से जीव पार हो सकता है॥ ४४९ ॥

तुलसी जसि भवितव्यता तैसी मिलै सहाय।
आपु न आवै ताहि पै, ताहि तहाँ लै जाय ॥ ४५० ॥

तुलसीदास जी कहते हैं—जैसी होनहार होती है वैसी ही सहायता भी मिलती है। वह स्वयं उसके पास नहीं आती किन्तु उसी को वहाँ ले जाती है॥ ४५० ॥

कै जूझिबो कै बूझिबो, दान कि काय कलेस।
चारि चारु परलोक-पथ, जथा जोग उपदेस ॥ ४५१ ॥

ब्राह्मणों का वेदाध्ययन द्वारा ज्ञानोपार्जन करना, क्षत्रियों का संग्राम करना, वैश्यों का दान देना, शूद्रों का सेवा करना धर्म है, इन चारों वर्णों को धर्मशास्त्र में मोक्ष मार्ग के लिए यथायोग्य उपदेश दिया गया है॥ ४५१ ॥

पात पात को सींचिबो न करु सरग-तरु हेत।
कुटिल कटुक फर फरैगो तुलसी करत अचेत ॥ ४५२ ॥

पत्ते पत्ते को सीचकर कल्पतरु की आशा न करो क्योंकि उससे जो फल फलैगा बड़ा कड़ुवा होगा जो अचेत कर देगा भाव यह कि फल की आशा से यज्ञादि कर्म कर सब मनोकामनाएँ पूर्ण नहीं हो सकतीं। क्योंकि इनमें विघ्न अनेक हैं खण्डित हो जाने से दुःख ही भोगना पड़ता है, अतः तू सीधे रामनाम को जप जो सब कामनाओं को देने वाला है॥ ४५२ ॥

गठिबंध तें परतीति बड़ी, जेहि सब को सब काज।
कहब थोर समुझब बहुत, गाड़े बढ़त अनाज॥ ४५३॥

गाँठ में बाँध रखने से विश्वास ही बड़ा है जिससे सब का सब काम होता है, कहना थोरा है पर समझना बहुत चाहिए जैसे खेत में गाड़ने से अन्न बढ़ता है, (जिससे अपना और दूसरों का भला होता है।) भाव यह कि गुरु से दीक्षा लेकर बैठ रहने से कुछ फल नहीं किन्तु उस पर विश्वास कर उसके अनुसार कार्य करने ही से फल होता है, ऐसे ही लौकिक व्यवहार में द्रव्यादि रखने से कुछ लाभ नहीं होता, उसे व्यापार में लगाने से ही अपना और दूसरों का लाभ होता है॥ ४५३॥

अपनो ऐपन निज हथा तिय पूजहिं निज भीति।
फलै सकल मन कामना, तुलसी प्रीति प्रतीति॥ ४५४॥

अपने हाथ के ऐपन से दिवाल की छाप को अपनी ही दिवाल को स्त्रियाँ पूजती हैं, उनकी मन कामनाएँ पूरी होती हैं, प्रेम और विश्वास ही से सब कार्य पूर्ण होता है॥ ४५४॥

बरषत करषत आपु जल, हरषत अरघनि भानु।
तुलसी चाहत साधु सुर सब सनेह सनमानु॥ ४५५॥

सूर्य जल को सोखता है और वर्षाता है, पर अर्घ्यजल पा कर प्रसन्न होता है, तुलसीदास जी कहते हैं कि साधु और सब देवता प्रेम और सम्मान चाहते हैं॥ ४५५॥

स्रुति-गुन, कर-गुन, पु-जुग-मृग हय, रेवती, सखाउ।
देहि लेहि धन धरनि धरु, गयहु न जाइहि काउ॥ ४५६॥

स्रुति गुन (श्रवण से तीन नक्षत्र अर्थात् श्रवण, धनिष्ठा और शतभिक) कर-गुन (हस्त से तीन नक्षत्र अर्थात् हस्त, चित्रा और स्वाति) पुजुग (पु से आरम्भ होने वाले दोनों नक्षत्र अर्थात् पुष्य और पुनर्वसु) मृगसिर, अश्विनि, रेवती, अनुराधा इन १२ नक्षत्रों में कोई धन दे या पृथ्वी ले तो विश्वास रखे वह कभी जा नहीं सकती॥ ४५६॥

ऊगुन पुगुन वि अज कृ म, आ भ अ मू गुनु साथ।
हरो धरो गाड़ो दियो धन फिर चढ़ै न हाथ॥ ४५७॥

ऊगुन (ऊ से तीन उतरा फाल्गुनी, उतराषाढ और उतराभाद्रपद) पु-गुन (पु से तीन पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्वाभाद्रपद) वि (विशाखा) अज (रोहिणी) कृ (कृतिका) म (मघा) आ (आर्द्रा) भ (भरणी) अ (श्लेषा) मू (मूल) इन चौदह नक्षत्रों में, चोरी गया धन, धरोहर, गाड़ा, उधार दिया धन फिर हाथ पर नहीं चढ़ता, फिर नहीं मिलता ॥ ४५७ ॥

रवि हर दिसि गुन रस नयन, मुनि प्रथमादिक बार।
तिथि सब काज नसावनि, होइ, कुजोग बिचार ॥ ४५८ ॥

रविवार को द्वादसी, सोमार को एकादशी, मंगल को दशमी, बुध को तीज, वृहस्पत को षष्ठी, शुक्र को द्वितीया और शनिश्चर को सप्तमी पड़े तो कुयोग जाने। इसमें कोई शुभ कार्य सिद्ध नहीं होता ॥ ४५८ ॥

ससि सर नव दुइ छ दस गुन, मुनिफल वसु हर भानु ।
मेषादिक क्रम तें गनहि घात चंद्र जिय जानु ॥ ४५६ ॥

मेष का पहला, वृष का पाँचवाँ, मिथुन का नवाँ, कर्क का दूसरा, सिंह का छठाँ, कन्या का दसवाँ, तुला का तीसरा, वृश्चिक का सातवाँ, धन का चौथा, मकर का आठवाँ कुम्भ का ग्यारहवाँ मीन का बारहवाँ, स्थान चन्द्रमा का घातक है ॥४५९॥

नकुल सुदरसन दरसनी, छेमकरि चक चाष।
दस दिसि देखत सगुन सुभ, पूजहिं मन अभिलाष ॥ ४६० ॥

प्रयाण के समय दशों दिशाओं में से किसी ओर, नेवला, मछली, दर्पण, क्षेमकरी (इस नाम की एक चील पक्षी) चक्रवाक, खंजन इनमें से किसी एक को देखे तो शुभ शकुन समझना चाहिए और मन की अभिलाषा पूर्ण होती है ॥ ४६० ॥

सुधा साधु सुरतरु सुमन, सुफल सुहावनि बात।
तुलसी सीतापति भगति सगुन सुमंगल सात ॥ ४६१ ॥

अमृत, साधु, कल्पतरु, पुष्प, सुन्दर फल, अच्छी बात, श्रीरामचन्द्र जी की भक्ति ये सात यात्रा के समय शुभ शकुन और मंगलदायक हैं ॥ ४६१ ॥

भरत सत्रुसूदन लषन सहित सुमिरि रघुनाथ।
करहु काज सुभ साज सब मिलिहिं सुमंगल साथ ॥ ४६२ ॥

भरत, शत्रुघ्न, लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्र जी का स्मरण कर कोई काम करो, सब बनावों के साथ शुभ शकुन मिल जाता है ॥ ४६२ ॥

राम लषन कौसिक सहित सुमिरहु करहु पयान।
लच्छि लाभ लै जगत जसु, मंगल सगुन प्रमान॥ ४६३॥

यात्रा के समय श्रीराम लक्ष्मण का कौशिक विश्वामित्र सहित स्मरण करने से, बढ़ कर मगल शकुन दूसरा कोई नहीं है, इससे धन की प्राप्ति और संसार में यश मिलता है॥ ४६३॥

अतुलित महिमा वेद की तुलसी किये विचार।
जो निंदत निंदित भयो बिदित बुद्ध अवतार॥ ४६४॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि विचार करने से वेद की महिमा अपरम्पार है, बौद्धावतार प्रसिद्ध है जो वेद की निन्दा करने से निन्दित हुआ॥ ४६४॥

बुध किसान सर-वेद निज मते खेत सब सींच।
तुलसी कृषि लखि जानिबो उत्तम, मध्यम, नीच॥ ४६५॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि पण्डित रूपी किसान वेद रूपी तालाब से अपनी बुद्धि रूपी खेत को सींचता है, अतः उसकी खेती को देख उसके उत्तम, मध्यम और नीच परिश्रम का ज्ञान होता है। भाव यह कि वेद से जैसी शिक्षा ग्रहण किया है, उसका परिचय बुद्धि से ही मिलती है॥ ४६५॥

सहि कुबोल, साँसति सकल, अँगइ अनट अपमान।
तुलसी धरम न परिहरिय, कहि करि गये सुजान॥ ४६६॥

दूसरों के दुर्वचन, शासनाएँ, सह कर तथा बुराइयाँ और अपमान सह कर अपना धर्म न छोड़ना चाहिए। क्योंकि चतुर जनों ने केवल कहा ही नहीं है, किन्तु करके दिखा गये हैं॥ ४६६॥

अनहित भय परहित किये, पर-अनहित हितहानि।
तुलसी चारु बिचार भल, करिय काज सुनि जानि॥ ४६७॥

दूसरे की भलाई करने में भी बुराई की भय रहती है। यह बात देखी जाती है कि यदि किसी के साथ भलाई किया जाय तो वह बुराई करने को तैयार रहता है और दूसरे की बुराई करने में तो अपनी बुराई है ही। तुलसीदास जी कहते हैं कि अच्छी तरह से विचार लो, सुनलो और जान लो कि भला करना ही श्रेष्ठ है अर्थात् बुराई किसी की न करे॥ ४६७॥

पुरुषारथ, पूरब करम, परमेश्वर परधान।
तुलसी पैरत सरित ज्यों सबहिं काज अनुमान॥ ४६८॥

मनुष्य, जप, तप, नियम, संयम आदि के द्वारा जब आत्मबल प्राप्त कर लेता है, जब पूर्व कर्म उदय हो आते हैं, जब ईश्वर की उस पर कृपा होती है, तो संसार सागर में पैरते हुए पार पाने का उसे मार्ग मिल जाता है॥ ४६८॥

चलब नीतिमग, राम पग नेह निबाहब नीक।
तुलसी पहिरिय सो बसन जो न पखारे फीक॥ ४६९॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि न्यायोचित मार्ग में चलना और श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में प्रेम भली भाँति निवाहना चाहिए। वस्त्र वही पहनना चाहिए जो पछारने पर फीका न पड़े॥ ४६९॥

दोहा चारु बिचार चलु परिहरि बाद बिबाद।
सुकृत सींव, स्वारथ-अवधि, परमारथ-मरजाद॥ ४७०॥

उत्तम विचार के साथ दोहों पर चलो, वादविवाद छोड़ दो। क्योंकि यही सुकृत के मर्यादा, स्वार्थ की सीमा और परमार्थ की मर्यादा है॥ ४७०॥

तुलसी सो समरथ सुमती, सुकृति, साधु, सयान।
जो बिचारि व्यवहरइ जग, खरच लाभ अनुमान॥ ४७१॥

तुलसीदास जी कहते हैं—सामर्थ्यवान, बुद्धिमान, पुण्यात्मा, साधु, चतुर है वही जो इस संसार में विचार पूर्वक व्यवहार करता है, और आमदनी के अनुसार खर्च करता है॥ ४७१॥

जाय जोग जग छेम बिनु, तुलसी के हित राखि।
बिनुऽपराध भृगुपति, नहुष, वेनु, वृकासुर साखि॥ ४७२॥

संसार में जोग (अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति) छेम (प्राप्त वस्तु की रक्षा) बिना तुलसीदास के हितैषी श्रीराम को हृदय में रखे व्यर्थ है। इसके साक्षी बिना अपराध किये हुए के साथ अपराध करने वाले परशुराम, नहुष, वेणु, और वृकासुर हैं। अथवा संसार में बिना क्षेम के योग व्यर्थ है, गोस्वामी जी कहते हैं कि मेरे हितैषी श्रीरामचन्द्र जी निरपराधों की रक्षा करते हैं जैसे परशुराम से क्षत्रियों की, वेणु से प्रजा की, नहुष से शची की और वकासुर से ग्वाल वालों की॥ ४७२॥

बड़ी प्रतीति गठिबँध तें, बड़ो जोग ते छेम।
बड़ो सुसेवक साइँ तें, बड़ो नेम ते प्रेम॥ ४७३॥

तुलसीदास जी इस दोहे में चार सिद्धान्त कहते हैं—(१) गांठ में बांध रखने से विश्वास बड़ा है अर्थात् गुरु से राम नाम का उपदेश ले उस पर विश्वास न करे। तो क्या लाभ ? फल तो गुरु-उपदेशानुसार विश्वास करने ही से होगा—(२) योग से क्षेम बड़ा है, किसी वस्तु का संग्रह किया पर उसकी रक्षा न कर सका इससे लाभ क्या ? अर्थात् सज्जनों से अच्छी अच्छी बातों को श्रवण किया, पर उसको अपने हृदय में स्थान नहीं दिया तो क्या लाभ (३) अच्छा सेवक स्वामी से बड़ा है, जितना काम अच्छे सेवक से निकलता है, उतना स्वामी से नहीं। अर्थात् भगवद् प्राप्ति भक्तों ही द्वारा होती है। (४) नेम से प्रेम बड़ा है दिखाऊ आचार विचार तो बहुत करे पर भगवान् में प्रेम नहीं। अर्थात् भगवद् प्रेम ही प्रधान है अचार विचार नहीं॥ ४७३॥

सिष्य, सखा, सेवक, सचिव, सुतिय सिखावन साँच।
सुनि समुझिय, पुनि परिहरिय परमनरंजन पाँच॥ ४७४॥

शिष्य, मित्र, सेवक, सचिव, पतिव्रता स्त्री इनकी सच्ची शिक्षा को सुनो और समझो पुनः इनका त्याग कर दो क्योंकि ये पाँच पराये मन को प्रसन्न करने वाले हैं। भाव यह कि मुमुक्ष भगवद् पद की प्राप्ति में लीन है अतः उसे शिष्य के गुण (गुरु का आदर सम्मान करना) स्वयं आदर सम्मान पाने की इच्छा ही न करनी चाहिए। उसे तो दूसरे को आदर सम्मान करना चाहिए। मित्र का गुण सहायता देना है, पर मुमुक्षु को सहायता की क्या आवश्यकता, उसको तो दूसरों को सहायता देनी चाहिए। सेवक का गुण स्वामी की आज्ञापालन करना है। पर मुमुक्षु का धर्म सेवा करना न कि दूसरों से सेवा कराना। सचिव का गुण, सत्य न्यायानुसार सलाह देना, पर मुमुक्षु का आचारण ऐसा शुद्ध हो कि औरों से शिक्षा लेने का मौका न मिले स्वयं दूसरों को शिक्षा दे। स्त्री का गुण स्वामी को प्रसन्न करना है, पर मुमुक्षु को स्त्री का परित्याग करना चाहिए॥ ४७४॥

नगर, नारि, भोजन, सचिव, सेवक, सखा, अगार।
सरस परिहरे रंगरस निरस बिषाद बिकार॥ ४७५॥

स्त्री का परित्याग तभी करना चाहिए जब तक उसमें यौवन सौंदर्य और अपने में भोग शक्ति हो, नगर तभी छोड़ दे जब तक उस नगर में अपना मान प्रतिष्ठा बना रहे, भोजन

में स्वाद पूर्ण रूप से बना रहे तभी छोड़ दे, मन्त्री, नौकर, मित्र तथा घर सन्देह होने के पहले ही त्याग दे ॥ ४७५ ॥

तूठहिं निज रुचि काज करि, रूठहिं काज बिगारि ।
तीय, तनय, सेवक, सखा मन के कंटक चारि ॥ ४७६ ॥

स्त्री, पुत्र, सेवक और मित्र ये चार मन के काँटे हैं, जो अपनी रुचि अनुसार काम कर प्रसन्न होते हैं और स्वयं काम बिगड़ जाने पर रूठ जाते हैं, (चाहते हैं कि कोई मनावे) ॥ ४७६ ॥

दीरघ रोगी, दारिदी, कटुबच लोलुप लोग ।
तुलसी प्रान समान तउ होहिं निरादर-जोग ॥ ४७७ ॥

बहुत दिन का रोगी, दरिद्र, कड़ुवा वचन बोलने वाला और लोभी ये लोग यदि प्राण के सामान प्रिय क्यों न हों फिर भी निरादर ही के पात्र हैं ॥ ४७७ ॥

पाही खेती, लगनवट, ऋन कुब्याज, मग-खेत ।
बैर बड़े सों आपने किये पाँच दुःख हेत ॥ ४७८ ॥

पाही पर की खेती, अर्थात् जिस गाँव में बसे उसे दूर के गाँव की खेती, प्रेम, अधिक ब्याज पर कर्ज लेना, रास्ते पर का खेत और अपने से बड़े से वैर ये पाँचों मनुष्य अपने ही दुःख के लिए करता है ॥ ४७८ ॥

धाय लगे लोहा ललकि खैंचि लेइ नइ नीचु ।
समरथ पापी सो बयर, जानि बिसाही मीचु ॥ ४७९ ॥

जो लोग उत्तेजना में आकर बलवान से भीड़ जाते हैं या जो नीचों की नम्रता के वश हो जाते हैं, या जो समर्थ पापी से वैर करते हैं, वे जान बुझ कर अपनी मौत मोल लेते हैं अथवा समर्थ पापी दो प्रकार से घात करता है एक तो क्रोध के आवेश में अस्त्र शस्त्र से दूसरा नम्र होकर छल कपट से अतः इन दोनों बलवान् पापियों से वैर करना अपने आप मौत लेना है ॥ ४७९ ॥

सोचिय गृही जो मोहबस, करैकर्म पथ-त्याग ।
सोचिय जती प्रपंच रत, बिगत बिवेक बिराग ॥ ४८० ॥

जो गृहस्थ मोह के वश हो कर्म मार्ग का त्याग करता है, वह सोचनीय है और जो संन्यासी विषयासक्त हो त्याग और विवेक को छोड़ दिये है, वह भी सोचनीय है ॥ ४८० ॥

तुलसी स्वारथ सामुहो, परमारथ तनु पीठि।
अंध कहे दुख पाइ है, डिठियारो केहि डीठि॥ ४८१॥

तुलसीदास जी कहते हैं—जीव स्वार्थ, इन्द्रियों के भोगों को अपने सामने रख परमार्थ भगवद्‌पथ प्राप्ति की ओर पीठ किये हुए है, जीव को इस दशा में उसे अंधा कहा जाय तो वह बुरा मानता है, पर उसे आँख कहाँ है कि आँख वाला कहा जाय। भाव यह कि जीव और ईश्वर के बीच में माया है, जब जीव संसारी काम वासनाओं में प्रवृत्त हो जाता है तब उस पर माया का परदा पड़ जाता है और वह परमानन्द ब्रह्म रूप को नहीं देख पाता, पर अपने को बड़ा चतुर लगाता है, पर ज्ञानी जन उसे मूढ़ ही समझते हैं॥ ४८१॥

बिनु आँखिन कि पानही पहिचानत लखि पाय।
चारि नयन के नारि नर सूझत मींचु न माय॥ ४८२॥

बिना नेत्र की पनही (जूता) पैर को पहचान लेती है, अर्थात् एक पैर का जूता दूसरे पैर में नहीं होता। पर चार नेत्र (दो बाह्य, दो आभ्यन्तरिक) नेत्र के स्त्री पुरुष न तो मृत्यु को ही देखते हैं न माया को। भाव यह कि ब्रह्म अंश जीव होने पर भी माया को नहीं देखता॥ ४८२॥

जो पै मूढ उपदेस के होते जोग जहान।
क्यों न सुयोधन बोध कै आये स्याम सुजान॥ ४८३॥

यदि मूर्ख उपदेश देने योग्य संसार में होते तो श्रीकृष्ण भगवान् सुयोधन (दुर्योधन) को समझा कर क्यों न लौटते। भाव यह कि मूढ़ जन संसारी मद में ऐसे मत्त रहते हैं कि सज्जनों के उपदेश का उनके हृदय पर असर नहीं पड़ता॥ ४८३॥

सोरठा

फूलै फरै न बेत, जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलैं बिरंचि सम॥ ४८४॥

यदि मेघ अमृत ही बरसे पर वेत फलता फूलता नहीं, वैसे ही यदि ब्रह्मा के समान भी गुरु मिलें तो भी मूर्ख के हृदय में ज्ञान नहीं होता॥ ४८४॥

दोहा

रीझि आपनी बूझि पर खीझि बिचार-बिहीन।
ते उपदेस न मानहिं मोह-महोदधि-मीन॥ ४८५॥

जो अपनी ही समझ पर प्रसन्न है और बिना विचारे क्रोध करता है, वह उपदेश क्यों कर मान सकता है, वह तो अज्ञान रूपी सागर में मछली के समान विहार कर रहा है। भाव यह कि जो अपने को सब से बुद्धिमान समझता है, जिसका मन विषयों में ही लीन है, उसको परब्रह्म परमात्मा का ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है ॥ ४८'१ ॥

अनसमुझे अनुसोचनो, अवसि समुझिये आपु।
तुलसी आपु न समुझिये पलपल पर परितापु ॥ ४८६ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं, बिना समझे और बिना विचारे काम करने वाले स्वयं ही समझ लेंगे, यदि वे पहले ही नहीं समझ लेते तो पग पग पर दु:ख सहते हैं ॥४८६॥

कूप खनत मंदिर जरत, आये धारि बबूर।
बवहिं, नवहिं निज काज सिर, कुमति सिरोमनि कूर ॥ ४८७ ॥

जब घर में आग लगी तो कुआँ खोदने चले और जब सेना ने आ घेरा तो रोक के लिए बबूर का पेड़ लगाने चले, जब अपना काम आपड़ा तो इधर उधर सिर झुकाते फिरते हैं, ऐसे मनुष्य, निर्बुद्धि और दुष्टों के शिरोमणि हैं। भाव यह कि जब सारी इन्द्रियाँ शिथिल पड़ गयीं, शरीर रोग ग्रसित हो गया तब परमार्थ की सूझी और जब यमदूत आये तब सब से विनती करने लगे, इससे क्या ? जो कुछ करना है पहले ही कर लो ॥ ४८७ ॥

निडर ईस तें बीसकै बीसबाहु सो होइ।
गयो गयो कहैं सुमति सब, भयो कुमति कह कोइ ॥ ४८८ ॥

जो ईश्वर से नहीं डरता उसकी दशा रावण की सी ही हो जाती है, सब बुद्धिमान जन यही कहते हैं कि इसकी अधोगति हो गयी, कोई ही नीच बुद्धि कहते हैं कि इसकी बढ़ती हुई ॥ ४८८ ॥

जो सुनि समुझि अनीनिरत, जागत रहैं जु सोइ।
उपदेसिबो जगाइबो तुलसी उचित न होइ ॥ ४८९ ॥

जो सुन समझ कर सचेत रहते हुए भी अनीति रत हैं, तुलसीदास जी कहते हैं कि ऐसों को उपदेश देना और सचेत करना उचित नहीं ॥ ४८९ ॥

बहुमुख, बहु रुचि, बहु बचन, बहु अचार व्यवहार।
उनको भलो बनाइबो यह अज्ञान अपार ॥ ४९० ॥

जिसकी बुद्धि चारों ओर दौड़ती है, जिसकी इच्छा स्थिर नहीं है, जो बहुत बोलता है, जो बहुत आचार व्यवहार में लगा है, उसका भला मनाना यह अत्यन्त मूर्खता है ॥ ४९० ॥

लोगनि भलो मनाव जो भलो होन की आस ।
करत गगन को गेंडुआ सो सठ तुलसीदास ॥ ४६१ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जो कोई लोगों के भला कहने से भले होने की आशा करता है, वह मूर्ख मानो आकाश की गेंडुर बनाना चाहता है। अर्थात् शून्य वस्तु को अपने सिर रख बोझे से आराम चाहता है ॥ ४९१ ॥

अपजस जोग कि जानकी, मनिचोरी की कान्ह ।
तुलसी लोग रिझाइबो करषि कातिबो नान्ह ॥ ४६२ ॥

क्या सीता जी कलंक योग्य थीं और कृष्ण भगवान् मणि के चोर थे, (पर इन्हें भी दुष्टों ने बदनाम किया) तुलसीदास जी कहते हैं कि संसारी लोगों को प्रसन्न करना वैसा ही व्यर्थ है जैसे खींच तान कर महीन सूत कातना ॥ ४९२ ॥

तुलसी जुपै गुमान को होतो कछू उपाउ ।
तौ कि जानिकिहि जानि जिय परिहरते रघुराउ ॥ ४६३ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि यदि लोकापवाद को (निर्मूल कलंक को) दूर करने के लिए कोई उपाय होता तो श्रीरामचन्द्र जी अपनी परम प्यारी सती सीता को निष्कलंक जानते हुए भी कभी त्यागते ॥ ४९३ ॥

माँगि मधुकरी खात ते, सोवत गोड़ पसारि ।
पाय प्रतिष्ठा बढ़ि परी, ताते बाढ़ी रारि ॥ ४६४ ॥

जो लोग मधुकरी माँग कर खाते थे वे पैर पसार कर निर्द्वन्द सोते थे, प्रतिष्ठा पा कर वे बढ़ गये इस लिए झगड़ा भी बढ़ गया ॥ ४९४ ॥

तुलसी भेड़ी की धँसनी जड़-जनता-समान ।
उपजतही अभिमान भो, खोवत मूढ़ अपान ॥ ४६५ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं मूर्ख जनों का सम्मान, भेड़िया धसाना के समान है, ऐसे सम्मान से मूर्खों में अभिमान तुरन्त उत्पन्न हो जाता है और वह मूर्ख अपनी संग्रहीत वस्तु या आत्मज्ञान को खो बैठता है ॥ ४९५ ॥

लही आँख कब आँधरे बाँझ पूत कब ल्याइ।
कब कोढ़ी काया लही जग बहराइच जाइ* ॥ ४९६ ॥

गोस्वामी जी के हिन्दुओं के प्रति ये तीन प्रश्न हैं (१) ऐसा कौन अंधा है जिसने बहराइच में जाकर गाजीमियाँ के पूजने से आँख पायी, (२) कौन बाँझ स्त्री है जिसने सन्तान पायी (३) कौन कोढ़ी है जिसने निर्मल देह पायी ? कोई नहीं ॥ ४९६ ॥

तुलसी निरभय होत नर सुनिअत सुरपुर जाइ।
सो गति देखियत अछत तनु सुख संपति गति पाइ ॥ ४९७ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि सुनता हूँ कि स्वर्ग लोक में जा कर लोग (जरा मरण, सुख, दुःख, व्याधि आदि से) निर्भय हो जाते हैं, (पर मरने पर की कौन कहे) यह हालत तो इसी शरीर रहते ही देखता हूँ कि सुख ऐश्वर्यादि पा कर लोग निडर हो जाते, कर्माकर्म का विचार नहीं करते ॥ ४९७ ॥

तुलसी तोरत तीरतरु, बकहित हंस बिडारि।
बिगत-नलिन-अलि, मलिन जल, सुरसरिहूँ बढ़ियार ॥ ४९८ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं देवनदी (गंगा जी) जल के बढ़ने पर गंदला हो जाती है, जिससे कमल और भौंरे नष्ट होते हैं, तथा वह निडर हो कर किनारे के वृक्षों को तोड़ डालती है, यदि वह किसी के काम आती है तो हंस को नष्ट कर बगले के काम आती है। भाव यह कि सज्जन जन भी एक बारगी बढ़ जाने पर दूसरों की बुराई ही करते हैं, यदि उनसे भला होता है तो दुर्जनों ही का ॥ ४९८ ॥

अधिकारी बस औसरा भलेउ जानिबे मंद।
सुधासदन बसु, बारहें चउथे चउथिउ चंद ॥ ४९९ ॥

---

* बहराइच में सालार मसऊद (गाजीमियाँ) की दरगाह है। यह महमूद ग़ज़नवी का भांजा था। यह वही महमूद गजनवी है जिसने हिन्दू मंदिर को नष्ट भ्रष्ट किया था। महमूद के कन्नौज से आगे न बढ़ने पर सालार मसऊद गाजी होने के हौसिले से कुछ सेना लेकर अवध की ओर आया। यहाँ श्रावस्ती (आधुनिक महेत महेत जो बलरामपुर के पास है) के जैन राजा सुहृद्देव के हाथ मारा गया। और एक कुण्ड में इसकी लाश डाल दी गयी, इसी कुण्ड को भरवा कर औरंगजेब। जो (हिन्दुओं का नामो निशाँ मिटा देना चाहता था) कब्र बनवा दी। यही गाजीमियाँ के नाम से प्रसिद्ध है। इसी दरगाह पर कई हजार यात्रि जाया करते हैं, जिनमें ९८ फी सदी हिन्दु होते हैं, हिन्दुओं को सावधान हो जाना चाहिए। अब तो इस नीचता को छोड़ दें।

भले अधिकारी भी अवसर वश मंद हो जाते हैं, अमृत का स्थान चन्द्रमा भी आठवें बारहवें और चौथे स्थान तथा भादों सुदी चौथ को मंद हो जाता है ॥ ४९९ ॥

त्रिविध एक विधि प्रभु-अनुग अवसर करहिं कुठाट ।
सूधे टेढ़े सम विषम, सब महँ बारहबाट ॥ ५०० ॥

(राज्य शासन के चार विधि हैं शाम, दाम दण्ड और भेद पर) राजा तीन ही विधि से दाम, दण्ड, और भेद ही से काम लेता है पर उसके नौकर एक ही विधि दण्ड ही से काम करते हैं सीधे, टेढ़े, समविषम सब के साथ समान ही व्यवहार करते हैं ॥ ५०० ॥

प्रभु तें प्रभु-गन दुखद लखि प्रजहिं सँभारै राउ ।
कर तें होत कृपान को कठिन घोर घन घाउ ॥ ५०१ ॥

स्वामी से भी बढ़ कर नौकर को दुःख देने वाला देख कर राजा प्रजा की रक्षा करता है, क्योंकि हाथ की चोट से तलवार का घाव गहरा होता है, यहाँ राजा हाथ है, नौकर तलवार ॥ ५०१ ॥

व्यालहु तें बिकराल बड़ व्यालफेन जिय जानु ।
वहि के खाये मरत है, वह खाये बिनु प्रानु ॥ ५०२ ॥

सर्प से भयङ्कर अफीम को समझो सर्प के डंसने से आदमी मरता है, पर अफीम बिना खाये ही निर्जीव हो जाता है* ॥ ५०२ ॥

कारज तें कारन कठिन होइ दोष नहिं मोर ।
कुलिस अस्थि तें, उपल तें लोह कराल कठोर ॥ ५०३ ॥

भरत जी पश्चात्ताप करते हुए अपने ऊपर कहते हैं—कारण से कार्य कठिन होता है, इसमें मेरा दोष क्या है, जैसे हड्डी से बना वज्र और पत्थर से बना लोहा उनसे भी कठोर होता, वैसे ही मेरा जन्म कठिन हृदय माता कैकेयी से है अतः मेरा उससे भी बढ़ कर कठोर होना स्वाभाविक ही है ॥ ५०३ ॥

काल विलोकत ईस-रुख, भानु काल-अनुहारि ।
रविहि राउ, राजहि प्रजा, बुध व्यवहरहिं बिचारि ॥ ५०४ ॥

---

* जिसको अफीम खाने की आदत पड़ जाती है, उसको अफीम नहीं मिलता तो वह विकल, निर्जीव तथा शक्ति हीन हो जाता है ।

काल ईश्वर की इच्छानुसार चलता है और सूर्य काल के अनुसार, राजा का बर्ताव सूर्य के समान है, अर्थात् जैसा समय देखता है वैसा ही राजा बर्ताव करता है और प्रजा के अनुकूल चलता है, पर पण्डित जन विचार पूर्वक बर्ताव करते हैं ॥ ५०४ ॥

जथा अमल पावन पवन पाइ कुसंग सुसंग ।
कहिय कुबास सुबास तिमि काल महीस-प्रसंग ॥ ५०५ ॥

जैसे स्वच्छ पवित्र वायु अच्छा या बुरा संग पा कर सुगंधित या दुर्गंधित कहा जाता है, वैसे ही राजा के प्रसंग से समय भी भला या बुरा कहा जाता है, अर्थात् न्यायी राजा के शासन में भला समय और अन्यायी राजा के शासन में बुरा समय कहा जाता है ॥ ५०५ ॥

भलेहु चलत पथ पोच भय, नृप-नियोग नय नेम ।
सुतिय सुभूपति भूषियत लोह-संवारित हेम ॥ ५०६ ॥

जो राजा अपनी आज्ञा और नियम का न्यायानुकूल पालन करता है अर्थात् अपराधियों को कर्मानुसार न्यायानुकूल दण्ड देता है, उसके राज्य में भले लोग भी राज्यापमान के भय से उचित मार्ग पर चलते हैं। सर्वोत्तम धातु होने पर भी निकृष्ट लोहे के यन्त्रों द्वारा पीट पाट कर सोने से गहना बनता है, जिसके धारण करने से सुन्दरी स्त्री और भले राजा के सौन्दर्य और तेज बढ़ता है ॥ ५०६ ॥

माली भानु किसान सम नीति निपुन नरपाल ।
प्रजा-भागबस होहिंगे कबहुँ कबहुँ कलिकाल ॥ ५०७ ॥

माली, सूर्य और किसान के समान नीति निपुण राजा कलिकाल में प्रजा के भाग्य ही वश कभी कभी होते हैं ॥ ५०७ ॥

इस दोहे के द्वारा अच्छे राजा को तीन उदाहरणों द्वारा दर्शाते हैं—

माली का स्वभाव है कि वह मुरझाये हुए कमजोर छोटे वृक्षों को छाया, जल, खाद आदि से रक्षा करता है और जो वृक्ष बहुत बढ़ कर दूसरे वृक्षों को हानि पहुँचाते हैं, उन्हें काट छाँट कर ठीक करता है।

सूर्य जहाँ जल की अधिकता है वहाँ का जल लेकर जहाँ जल नहीं हैं वहाँ जल देता है, अपनी किरणों द्वारा गर्मी पहुँचा कर वनस्पतियों की रक्षा करता है और अपनी आकर्षण शक्ति से उन्हें बढ़ाता है।

किसान का यह काम है कि तुच्छ घास आदि अन्न के पौधों को दबाना चाहते हैं उन्हें समूल नाश करता है।

इन तीन उपमाओं द्वारा गोस्वामी जी उत्तम राजा के कर्त्तव्य दर्शाते हैं।

बरषत हरषत लोग सब, करषत लखै न कोइ।
तुलसी प्रजा-सुभाग ते भूप भानु सो होइ॥ ५०८॥

तुलसीदास जी कहते हैं—सूर्य के समान राजा प्रजा के बड़े भाग्य से होता है। जैसे सूर्य का जल बरसते सभी देखते हैं, पर जल खींचते कोई नहीं, वैसे ही राजा को दान देते सभी देखते हैं, पर कर लेते समय किसी को अखरता नहीं॥ ५०८॥

सुधा सुनाज, कुनाज फल, आम असन सम जानि।
सुप्रभु प्रजाहित लेहि कर सामादिक अनुमानि॥ ५०९॥

सुधा—दूध, रस आदि, मोटा अनाज, फल, साधारण भोज्य पदार्थ सब को बराबर समझ अर्थात् अच्छा से अच्छा और खोटा से खोटा पदार्थ भी राज काज के लिए कर में देना चाहिए और अच्छा राजा प्रजा के हित के लिए साम दान दण्ड का विचार कर कर ले। साम अथात् मेल से मिले तो ले, दान गरीब प्रजा को सहायता देकर मिले तो ले और जो दे सकते हैं पर न दें तो उनसे दण्ड द्वारा ले। भाव यह कि राजा वही और उतना ही कर ले जो अमीर ग़रीब किसी प्रजा को न खले॥ ५०९॥

पाके, पकये बिटप-दल, उत्तम मध्यम नीच।
फल नर लहैं, नरेश त्यों करि बिचार मन बीच॥ ५१०॥

उत्तम प्रकृति के जो मनुष्य होते हैं, वे वृक्ष के पके फल लेते हैं, जो मध्यम प्रकृति के होते हैं, वे कच्चे ही फल तोड़ लेते हैं और जो नीच होते हैं वे डाल पत्ते समेत फल तोड़ लेते हैं। वैसे ही जो उत्तम राजा होता है, वह प्रजा से उतना ही कर लेता है जितना वह प्रसन्नता से दे सके, जो मध्यम होता है वह प्रजा को कष्ट दे कर कर लेता है और जो नीच होता है, वह प्रजा से इतना कर लेता है कि प्रजा नष्ट प्रायः हो जाती है॥५१०॥

रीझि खीझि गुरु देत सिख, सखा सुसाहिब साधु।
तोरि खाय फल होइ भल, तरु काटे अपराधु॥ ५११॥

गुरु शिष्य को शिक्षा देता है, मित्र सलाह देता है, अच्छे स्वामी आज्ञा देता है सज्जन जन उपदेश देते हैं कि वृक्ष से फल तोड़ कर खा लेना भला है, पर वृक्ष काटना

पाप है। ये बातें वे लोग प्रसन्नता से कहते हैं, और विपरीत आचरण (वृक्ष को तोड़ डालना देख कर नाराज होते हैं) भाव यह कि संसारी जनों के प्रति यही व्यवहार रखे ॥ ५११ ॥

धरनि-धेनु चारितु चरत, प्रजा सुबच्छ पेन्हाइ ।
हाथ कछू नहिं लागि है किये गोड़ की गाइ ॥ ५१२ ॥

पृथ्वी गौ रूप है, राजा का चरित्र चारा है, प्रजा बछड़ा है, राजा के अच्छे चरित्र रूपी चारा से सन्तुष्ट हो कर पृथ्वी रूपी गौ पेन्हाकर प्रजा को अन्न रूपी दूध देती है, यदि गाय को ना दिया जाय तो कुछ हाथ नहीं लगेगा, भाव यह कि न्यायी राजा के राज्य में प्रजा सुखी रहती है ॥ ५१२ ॥

चढ़े बबूरे चंग ज्यों, ज्ञान ज्यों सोक-समाज ।
करम धरम सुख सम्पदा त्यों जानिबे कुराज ॥ ५१३ ॥

जैसे बवंडर में चढ़ कर पतंग छिन्न भिन्न हो जाती है और शोक समाज में जैसे ज्ञान चला जाता है, वैसे ही बुरे राज्य में कर्म, धर्म, सुख, सम्पत्ति सभी नष्ट हो जाते हैं ॥ ५१३ ॥

कंटक करि करि परत गिरि साखा सहस खजूरि ।
मरहिं कुनृप करि करि कुनय सों कुचालि भव भूरि ॥ ५१४ ॥

जैसे खजूर की डालियाँ पृथ्वी पर गिर कर पृथ्वी को कण्टकमय करके नष्ट हो जाता है, वैसे ही बुरे राजा अपनी कुनीति से बुरी चालें चल कर स्वयं नष्ट हो जाता है ॥ ५१४ ॥

काल तोपची, तुपक महि, दारू-अनय कराल ।
पाप पलीता, कठिन गुरु गोला पुहुमीपाल ॥ ५१५ ॥

समय तोप चलाने वाला है, बन्दूक पृथ्वी है, बारूद भयंकर अन्याय है, पाप पलीता (बत्ती) है दुष्ट सलाह देने वाला गुरु है और गोला राजा है। भाव यह कि समय ही सब कुछ कराता है, जैसा समय सतयुग, कलियुग होता है, वैसा ही राजा भी होता है, कलियुग में राजा लोह द्वारा ही प्रजा का शासन करता है ॥ ५१५ ॥

भूमि रुचिर रावन-सभा, अंगद-पद महिपाल ।
धरम राम नय सीय बल अचल होत सुभ काल ॥ ५१६ ॥

जैसे रावन की सभा में श्रीरामचन्द्र जी और सीता का बल पाकर अङ्गद का पैर किसी से नहीं उठा, वैसे ही अच्छे समय में राजाओं का धर्म और उनकी नीति अटल रहती है ॥ ५१६ ॥

प्रीति-रामपद नीतिरत धरम प्रतीति सुभाइ ।
प्रभुहि न प्रभुता परिहरै कबहुँ बचन मन काइ ॥ ५१७ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में जिसको प्रेम है, जो न्याय रत है (न्यायी है) जिसका धर्म में स्वाभाविक प्रेम है, ऐसे राजा को मन, वचन और कर्म से कभी प्रभुता नहीं छोड़ती ॥ ५१७ ॥

कर के कर मन के मनहिं, बचन बचन गुन जानि ।
भूपहि भूलि न परिहरै बिजय बिभूति सयानि ॥ ५१८ ॥

जो राजा हाथ का गुण कर्म करना, मन का गुण मनन करना वचन का गुण वाक्चातुरी यह जानता है, उस राजा को विजय, ऐश्वर्य और चतुराई नहीं छोड़ती ॥ ५१८ ॥

गोली, बान सुमंत्र सर समुझि उलटि मन देखु ।
उत्तम मध्यम नीच प्रभु बचन बिचारि बिसेखु ॥ ५१९ ॥

गोली सीधे जाती है, बान सीधे और टेढ़े दोनों तरह से जाता है, मन्त्र द्वारा प्रेरित सर का तो कहना ही क्या इसकी गति को समझ लो फिर इन्हें उलट दो अर्थात् मन्त्र, सर, बान और गोली करो । अब विचार कर देख लो जो उत्तम होते हैं, उनके वचन (मन्त्र सर के समान) सच्चा, पवित्र और हृदय में पैठने वाले होते हैं, जो मध्यम होते हैं, उनके वचन सामान्य रूप से भला और सुनने में भी भला । पर जो नीच होते हैं उनके वचन गोली के समान सीधे प्राणघातक होते हैं ॥ ५१९ ॥

सत्रु सयानो सलिल ज्यों राख सीस रिपुनाउ ।
बूड़त लखि, पग डगत लखि, चपरि चहूँ दिसि धाउ ॥ ५२० ॥

जैसे जल नाव को अपने सिर पर रखता है वैसे ही सयाने शत्रु भी अपने शत्रु को सिर पर रखते हैं, उपरी सत्कार आदि खूब करते हैं पर नाव जब डूबने लगता है तब जल चारों ओर से नाव को दबोच देता है, वैसे ही सयाने शत्रु भी अपने शत्रु को

अस्थिर देख चारों ओर से आक्रमण करता है। भाव यह कि जो सयाने शत्रु होते हैं, वे ऊपर से तो मित्र बने रहते हैं, पर मौका पाकर सर्वनाश कर डालते हैं ॥ ५२० ॥

रैयत, राज-समाज, घर, तन, धन, धरम, सुबाहु।
शांत सुसचिवन सौंपि सुख बिलसहिं नित नर नाहु ॥ ५२१ ॥

प्रजा, राजसमाज, घर, शरीर, धन, धर्म और सेना को शान्त और भले मंत्री को सौंप कर राजा स्वयं विहार करता है। अर्थात् राज्य शासन की सब से उत्तम विधि यही है कि प्रत्येक कर्मचारी को, उसकी योग्यतानुसार काम सौंप दे, ऐसा करने से राज काज भली भाँति चलता रहता है और राजा स्वयं सुख से जीवन व्यतीत करता है॥ ५२१ ॥

मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान को एक।
पालै पोषै सकल अंग तुलसी सहित विवेक ॥ ५२२ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं—जैसे मुख खाने और पीने के लिए एक ही है, पर पालन सब अंगों का करता है, वैसे ही प्रधान को भी अपने आश्रित जनों को सब तरह से रक्षा करनी चाहिए ॥ ५२२ ॥

सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिब होइ।
तुलसी प्रीति की रीति सुनी सुकवि सराहहिं सोइ ॥ ५२३ ॥

सेवक को हाथ, पैर और नेत्र के समान होना चाहिए। अर्थात् सब तरह से मालिक की सेवा करे और मालिक को मुख के समान होना चाहिए। अर्थात् सर्व प्रकार से मालिक को अपने आश्रितों की रक्षा करनी चाहिए। तुलसीदास जी कहते हैं कि इस स्नेह को व्यवहार को सुन सभी अच्छे कवि सराहना करेंगे ॥ ५२३ ॥

मंत्री, गुरु अरु बैद जो प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धरम, तन तीनि कर होइ बेगिहि नास ॥ ५२४ ॥

मंत्री, गुरु और वैद्य यदि भय या आशा से मुँह देखी बात बोलते हैं, तो राजा के राज का, शिष्य के धर्म का और रोगी के शरीर का अवश्य नाश होता है। जैसे राजा ने प्रजा से अनुचित कर लेने की सलाह ली। मन्त्री ने राजा की इच्छानुकूल सलाह दे दी। मन्त्री की राय पाकर राजा अवश्य ही अत्याचार करेगा। इसका फल यह होगा कि प्रजा की आह से उस राजा और राज्य का अवश्य ही नाश होगा। इसी तरह शिष्य

को कुपथ में जाते देख गुरु ने उसे मना न किया तो शिष्य भी धर्मपथ से भ्रष्ट हो कर नाश को प्राप्त होगा। ऐसे ही रोगी ने भी अपथ्य भोजन माँगा और वैद्य ने खाने को कह दिया तो उस रोगी का अवश्य ही नाश होगा ॥ ५२४ ॥

रसना मंत्री, दसन जन, तोष पोष निज काज।
प्रभु-कर सेन पदादिका, बालक राज समाज ॥ ५२५ ॥

अज्ञानी राजसमाज में राजा का मंत्री जीभ है, अर्थात् जैसे जीभ स्वयं ही स्वाद ग्रहण करती है, स्वादु वस्तुओं को ही ग्रहण करती है, चाहें उसे शरीर अस्वस्थ्य ही क्यों न हो जाय वैसे ही राजा स्वयं ही ऐश आराम करता है, प्रजा चाहें नष्ट हो जाय, इसका विचार नहीं रखता। जिसके नौकर चाकर दाँत हैं अर्थात् जैसे दाँत का काम काटना कुचलना है, वैसे ही उस राजा के नौकर चाकर भी प्रजा को कुचल डालते हैं। अपने ही स्वार्थ सिद्धि से वह राजा प्रसन्न रहता है। जिस राजा का स्वामी हाथ है, अर्थात् उसके लिए करने अनकरने कोई काम कर डालना असम्भव नहीं, जिसकी सेना पैर है, सेना अपनी ही रक्षा के लिये रखता है। प्रजा में चाहें गुण्डे बदमाश कितने ही उत्पात मचावें पर उस सेना द्वारा उनकी रक्षा नहीं की जाती। अथवा जो राजा अपनी प्रजा को बालक रूप मानता है, उसके मंत्री जीभ के समान हैं, हितकर उपदेश देने वाले हैं, उसके नौकर दाँत के समान हैं, अर्थात् दाँत अन्न को इस तरह कुचलता है कि पेट में जाने पर वह आसानी से हजम हो सके वैसे ही वे नौकर प्रजासुख के लिए काम करते हैं। वह राजा अपना परम कर्त्तव्य यही समझता है कि मेरी प्रजा बलवान और संतुष्ट रहे। उसकी सेना हाथ के समान है, अर्थात् प्रजा की रक्षा के लिए है ॥ ५२५ ॥

लकड़ी डौआ करछुली सरस काज अनुहारि।
सुप्रभु संग्रहहिं परिहरहिं सेवक सखा बिचारि ॥ ५२६ ॥

जैसे आग पर चढ़ाई वस्तु को चलाने के लिए जैसी वस्तु होती है उसके अनुसार लकड़ी का डौआ (करछुल) या अन्य धातु निर्मित कलछुली काम में लाते हैं, वैसे ही भला राजा भी सेवक और मित्र को विचार कर रखता या त्यागता है ॥ ५२६ ॥

प्रभु समीप छोटे बड़े निबल होत बलवान।
तुलसी प्रगट बिलोकिये कर अँगुली अनुमान ॥ ५२७ ॥

प्रभु के समीप रहने से छोटे बड़े और निर्बल बलवान होते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं, प्रत्यक्ष ही हाथ की अँगुलियों को देख कर अनुमान कर लो। अर्थात् शरीर के सब

अंगों का राजा सिर है, उसके पास हाथ है इस लिए हाथ की अंगुलियाँ बड़ी और मजबूत हैं, पर पैर सिर से दूर है इसलिए पैर की अँगुलियाँ छोटी और निर्वल होती हैं ॥ ५२७ ॥

साहब तें सेवक बड़ो जो निज धरम सुजान ।
राम बाँधि उतरे उदधि, लाँघि गये हनुमान ॥ ५२८ ॥

जो सेवक अपने कर्त्तव्य में चतुर है, वह मालिक से भी बड़ा (बलवान्) है। देखो, रामचन्द्र जी (स्वामी होने पर) लङ्का में जाने के लिए समुद्र में पुल बाँध कर पार गये। पर हनुमान (कर्त्तव्य ज्ञान रखने वाले सेवक होने से) सीतान्वेषण के समय समुद्र को लाँघ गये ॥ ५२८ ॥

तुलसी भल बरतरु बढ़त, निज मूलहि अनुकूल ।
सबहिं भाँति सब कहँ सुखद दलनि-फलनि-बिनु फूल ॥ ५२९ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं—बरगद के वृक्ष अपनी जड़ के अनुकूल बढ़ता है, अर्थात् जितना ऊपर बढ़ता है उतना ही अपनी जड़ों को भी बढ़ाता है, इससे सब तरह से छाया, पत्ती, लकड़ी, फल आदि से सब को आराम पहुँचाता है पर फूलता नहीं अभिमान नहीं करता। भाव यह कि ऐश्वर्यादि युक्त मनुष्य को निरभिमान होना चाहिए तथा उसको सदा दूसरों को आराम पहुँचाने का प्रयत्न करना चाहिए ॥ ५२९ ॥

सधन, सगुन, सधरम, सगन, सबल सुसाइँ महीप ।
तुलसी जे अभिमान बिनु ते त्रिभुवन के दीप ॥ ५३० ॥

तुलसीदास जी कहते हैं—कोश युक्त, गुणवान्, धर्मवान् सेवकादि से युक्त, बलवान्, श्रेष्ठ जो राजा अभिमान रहित हैं वे तीनों लोकों के दीप हैं ॥ ५३० ॥

तुलसी निज करतूति बिनु मुकत जात जब कोइ ।
गयो अजामिल लोकहरि, नाम सक्यो नहिं धोइ ॥ ५३१ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जब कोई अपनी करनी के विना मुक्त होता है तो उसका नाम का कलंक मिटता नहीं, जैसे अजामिल विना करनी के वैकुण्ठ गया पर अपने दूषित नाम को न धो सका ॥ ५३१ ॥

बड़ो गहेते होत बड़ ज्यों बावन-कर-दंड ।
श्री प्रभु के संग सों बड़ो गयो अखिल ब्रह्मंड ॥ ५३२ ॥

बड़ों के शरण होने से आदमी बड़ा होता है, वावन का दण्ड* विष्णु भगवान् के संग से बढ़ कर अखिल ब्रह्माण्ड में पहुँचा ॥ ५३२ ॥

तुलसी दान जे देत हैं जल में हाथ उठाय।
प्रतिग्राही जीवैं नहीं दाता नरकै जाय ॥ ५३३ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं—गङ्गा में खड़े हो कर गंगापुत्र आदि को जो दान दिया जाता है, वह ऐसा हो जैसे जल में मछली पकड़ने के लिए चारा जिसे लेने वाला भी मर जाता है और देने वाला नरक में जाता है। दान सुपात्र ही को देना चाहिए। कुपात्र को दान देने से देने वाला तो नरक जाता ही है साथ कुपात्र भी अधर्म करके नरकगामी होता है ॥ ५३३ ॥

आपन छोड़ो साथ जब ता दिन हितू न कोइ।
तुलसी अंबज अंबु बिन तरनि तासु रिपु होइ ॥ ५३४ ॥

जब अपना साथ छूट जाता है तब कोई हितकारी नहीं रह जाता। जैसे जल के बिना सूर्य कमल का शत्रु हो जाता है अर्थात् जल रहने पर सूर्य कमल को पोषता है, पर जल न रहने पर सूर्य उसको सूखा डालता है। भाव यह कि ईश्वर ही अपना है, उसका साथ छूटने से और संसारी जितने संबन्ध हैं सब जीव को सताने वाले ही हैं ॥ ५३४ ॥

उरबी परि कुलहीन होइ, ऊपर कलाप्रधान।
तुलसी देखु कलापगति, साधन धन पहिचान ॥ ५३५ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जो साधु कुलहीन होकर वाह्याडम्बर के साथ पृथ्वी पर पड़े हैं उनके पहचान के लिए यह देखो कि उनके पास साधन धन कितना है। भाव यह कि जिस मनुष्य के कुल धर्म का पता नहीं उसके वाह्याचरणों को देख उस पर विश्वास करना उचित नहीं ॥ ५३५ ॥

तुलसी संगति पोच कि सुजनहिं होति मदानि।
ज्यों हरि रूप सुताहि तें कीन जुहारी आनि ॥ ५३६ ॥

---

*विराट भगवान् बलि के यहाँ वावन रूप धर कर हाथ में डंडा लिए याचने गये थे। जब बली ने तीन पग उनको पृथ्वी दी तब ये विराट् रूप धारण कर लिये। उनके बढ़ने के साथ ही साथ उनका डंडा भी बढ़ गया।

तुलसीदास जी कहते हैं कि दुष्टों की संगति भी सज्जनों को कल्याणदायिनी होती है जैसे राज कन्या से हरि का रूप धर कर व्याह करने से हरि ने आकर राजा की रक्षा की* ॥ ५३६ ॥

कलि-कुचालि सुभमति हरनि सरलै दंडै चक्र ।
तुलसी यह निहचय भई, बाढ़ि लेति नव बक्र ॥ ५३७ ॥

कुचालि कलियुग अच्छी बुद्धि को हरने वाला है क्योंकि चक्र (राजचक्र अर्थात् राजा राज पुरुषों के सहित) सीधे ही को दण्ड देता है। अतः यह निश्चय हो गया कि टेढ़े ही की नित्य नई नई बढती है। भाव यह कि कलियुग में अच्छी बुद्धि ही बिगड़ती है, बुरी बुद्धि अच्छी बुद्धि में नहीं परिणत होती और अच्छे जन ही सताये जाते हैं, दुर्जन से कोई नहीं बोलता ॥ ५३७ ॥

गोखग, खेखग बारिखग तीनों माहिं बिसेक ।
तुलसी पीवैं, फिरि चलैं, रहैं फिरैं संग एक ॥ ५३८ ॥

वह पक्षी जो अधिक उड़ नहीं सकते और विशेष कर पृथ्वी पर ही अपना जीवन बिताते हैं, आकाश के पक्षी, जल के पक्षी इन तीनों में यह विशेषता है कि वे अपनी जाति के संग ही, जल पीते चलने फिरते और रहते हैं। भाव यह की जो जीव जिस वृत्ति वाला होता है, वह उसी वृत्ति वालों का संग करता है ॥ ५३८ ॥

साधन समय, सुसिद्धि लहि, उभय मूल अनुकूल ।
तुलसी तीनिउ समय सम ते महि मंगल मूल ॥ ५३९ ॥

जो गुरु के बताये मार्ग पर चल कर सिद्धि प्राप्त करते और दोनों का मूल श्री कृपा की अनुकूलता प्राप्त करते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि इन तीनों अवस्था में जो समान रहते हैं वे ही संसार में मंगल मूल हैं ॥ ५३९ ॥

मातु-पिता-गुरु-स्वामी-सिख सिरधरि करहिं सुभाय ।
लहेउ लाभ तिन जनम कर, न तरु जनम जग जाय ॥ ५४० ॥

---

* भक्तमाल में यह कथा है कि एक बढ़ई ने काठ के दो हाथ जोड़ कर चतुर्भुजी विष्णु का रूप बनाया और एक राज कन्या पर मोहित होकर उससे ब्याह कर लिया। कन्या के पिता पर कोई आपत्ति आयी, उसने अपनी लड़की से अपने पति विष्णु से सहायता मांगने को कहा। अपने रूप की मर्यादा का विचार कर विष्णु भगवान् ने सचमुच ही उसकी रक्षा की।

माता, पिता, गुरु और स्वामी की आज्ञा को स्वभावतः मान कर (अर्थात् बिना किसी प्रकार के एतराज के) जो लोग काम करते हैं उन्हीं का जन्म सफल है नहीं तो संसार में जन्म लेना व्यर्थ है ॥ ५४० ॥

अनुचित उचित बिचार तजि, जे पालहिं पितु बैन ।
ते भाजन सुख सुजस के, बसहिं अमरपति-ऐन ॥ ५४१ ॥

जो अनुचित और उचित का विचार किये बिना ही पिता की आज्ञा का पालन करते हैं वे सुख और सुयश के पात्र हैं और वैकुण्ठ में बास करते हैं अर्थात् पिता चाहें अच्छी बात कहे या बुरी, इसकी विवेचना किये बिना ही पिता की आज्ञा का पालन करे ॥ ५४१ ॥

सोरठा

सहज अपावनि नारि, पति सेवत सुभ गति लहै ।
जस गावत स्रुति चारि, अजहुँ तुलसिका हरिहिं प्रिय ॥ ५४२ ॥

स्त्रियाँ स्वाभाव से ही पतित होती हैं, किन्तु पति की सेवा से शुभ गति पाती हैं। वृन्दा ने अपने पति की सेवा कर तुलसी का रूप धर कर विष्णु को प्यारी हुई, जिसका यश चारों वेद गाते हैं ५४२ ॥

दोहा

सरनागत कहँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि ।
ते नर पाँवर पापमय, तिनहिं बिलोकत हानि ॥ ५४३ ॥

जो अपना अनहित समझ कर शरण में आये हुए को त्याग देता है वह नीच मनुष्य पापमय है, उसको देखने से भी हानि होती है। भाव यह कि शरणागत को त्यागने वाला महापातकी है। उसको देखने से भी पाप लगता है ॥ ५४३ ॥

तुलसी तृन धन फूल को निरधन निपट निकाज ।
कै राखे कै संग चलै बाँह गहे की लाज ॥ ५४४ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं जिस तृण को जलने बहा कर किनारे पर छोड़ दिया है उसके समान निर्धन तथा बिलकुल निकम्मा कौन है, चाहें जल बाँह पकड़ने की लज्जा कर उसे अपने साथ ले चले या वहीं छोड़ दे ॥ ५४४ ॥

रामायन अनुहरत सिख जग भयो भारत रीति।
तुलसी सठ की को सुनै कलि-कुचाल पर प्रीति ॥ ५४५ ॥

रामायण की शिक्षा होने पर भी संसार में महाभारत की रीति चल पड़ी। अर्थात् रामायण में भ्रातृ सनेह की अनुपमेय शिक्षा है, इस आदर्श के रहते हुए भी महाभारत के आदर्श पर (भाई भाई को मारे) संसार में लोग चल पड़े। अतः तुलसी सरीखे शठ की कौन सुन सकता है, क्योंकि कलियुग में तो बुरे कामों ही पर प्रीति रहती है ॥ ५४५ ॥

पात पात कै सींचिबो बरी बरी कै लोन।
तुलसी खोटे चतुरपन कलि डहके कहु को न ॥ ५४६ ॥

जो प्रत्येक पते को सींचते हैं अर्थात् श्रीरामचन्द्र जी को छोड़ कर, भूत प्रेतादिकों की पूजा करते हैं, प्रत्येक बरी में नमक चखते हैं अर्थात् बहुतों के आश्रित रहते हैं, ऐसी जिनकी चतुरता है, उनको छोड़ कलियुग में और कौन डहकेगा। भाव यह कि इस महा कलिकाल में वे ही दुःख उठाते हैं जो श्रीरामचन्द्र जी को विसार अन्य देवी देवता भूत प्रेतादि की उपासना करते हैं ॥ ५४६ ॥

दंभ सहित कलि धरम सब, छल समेत व्यवहार।
स्वारथ सहित सनेह सब, रुचि अनुहरत अपार ॥ ५४७ ॥

कलियुग में सभी धर्म पाखंड सहित हैं, सभी व्यवहार छल युक्त हैं, सभी स्नेह स्वार्थ वश हैं और सभी अचार अपनी इच्छा के अनुकूल हैं, मनमाना है ॥ ५४७ ॥

प्रीति सगाई सकल गुन बनिज उपाय अनेक।
कल बल छल कलिमल मलिन डहकत एकहि एक ॥ ५४८ ॥

इस मलिन कलियुग में कोई प्रेम, कोई संबन्ध, सब तरह के गुण, कोई व्यापार, कोई अनेकों उपाय से, कोई छल कपट से एक दूसरे को ठगता है ॥ ५४८ ॥

चोर, चतुर, बटपार नट, प्रभु प्रिय भडुआ भंड।
सब भच्छक परमारथी कलि सुपंथ पाखंड ॥ ५४९ ॥

कलि में चोर ही चतुर और लुटेरे बहादुर कहलायँगे, राजा को भडुआ और भाण्ड प्रिय होंगे, सब अभक्ष्याभक्ष खाने वाला परमार्थी है और पाखण्ड ही सत्पथ कहा जायगा ॥ ५४९ ॥

असुभ वेष भूषन धरैं, भच्छ अभच्छ जे खाहिं ।
ते जोगी, ते सिद्ध नर, पूजित कलिजुग माहिं ॥ ५५० ॥

कलियुग में जो बुरा वेशभूषा धारण करता है और जो भक्ष्याभक्ष खाता है वही योगी, वही सिद्ध पुरुष कहा कर पूजा जाता है ॥ ५५० ॥

सोरठा

जे अपकारी चार, तिन कर गौरव, मान्य तेइ ।
मन बच करम लबार ते बकता कलिकाल महँ ॥ ५५१ ॥

कलियुग में जिनका आचरण दूसरों की बुराई करना ही है, वे ही गौरवान्वित तथा प्रतिष्ठित हैं । जो मन, वचन तथा कर्म तीनों से झूठे हैं वेही वक्ता (व्याख्याता) हैं ॥५५१॥

दोहा

ब्रह्म ज्ञान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरी बात ।
कौड़ी लागि ते मोह बस करहिं बिप्र-गुरु-घात ॥ ५५२ ॥

कलियुग में ब्रह्मज्ञान को छोड़ स्त्री पुरुष दूसरी बात नहीं चलाते, पर अज्ञान के वश हो एक कौड़ी के लिए ब्राह्मण गुरु का घात करते हैं । भाव यह कि माया में इतने फँसे हैं कि एक कौड़ी के लिए महापाप कर डालते हैं, पर बातों से अपने को महा ब्रह्मज्ञानी ही सिद्ध करते हैं ॥ ५५२ ॥

बादहिं सूद्र द्विजन सन हम तुम तें कछु घाटि ।
जानहिं ब्रह्म सो बिप्रवर आँखि दिखावहिं डाँटि ५५३ ॥

कलियुग में शूद्र ब्राह्मणों से विवाद करते हैं कि हम तुम से कुछ कम हैं, जो ब्रह्म को जानत है वही ब्राह्मण है (हम भी तो ब्रह्म को जानते हैं, ऐसा कह कर) डपट कर आँख दिखाते हैं ॥ ५५३ ॥

साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान ।
भगति निरूपहिं भगत कलि, निंदहिं बेद पुरान ॥ ५५४ ॥

कलियुग में भक्त साखी, (अपनी कही बात को कह कर) शब्दी (मन गढन्त शब्द कह कर) किस्सा उपाख्यान कह कर भक्ति का निरूपण करते हैं और वेद पुराणों की निन्दा करते हैं ॥ ५५४ ॥

स्रुति-संमत हरिभक्ति-पथ संजुत बिरति बिबेक।
तेहि परिहरहिं बिमोह-बस, कल्पहिं पंथ अनेक॥ ५५५॥

शास्त्र सम्मत, विरति और विवेक युक्त जो हरि भक्ति का मार्ग है उसे त्याग कर अज्ञान के वश लोग अनेक पंथों की रचना करते हैं॥ ५५५॥

सकल धरम बिपरीत कलि कल्पित कोटि कुपंथ।
पुन्य पराय पहार बन, दुरे पुरान सुभ ग्रंथ॥ ५५६॥

सब धर्मों के विपरीत जब से कलियुग में करोड़ों बुरे पंथ चले हैं तब से पुण्य वन और पर्वतों पर भाग गया और पुराण शास्त्र छिप गये॥ ५५६॥

धातुवाद, निरुपाधि बर, सदगुरु-लाभ, सुमीत।
देवदरस कलिकाल में पोथिन दुरे सभीत॥ ५५७॥

कलियुग में रसायन, बिना क्लेश के प्राप्त वर, अच्छे गुरु और मित्र की प्राप्ति तथा देवता का दर्शन पुस्तकों में डर कर छिप गये अर्थात् इन सब का शास्त्र में वर्णन है, पर इनकी प्राप्ति की यथार्थ युक्ति नहीं मिलती॥ ५५७॥

सुर-सदननि तीरथ, पुरिन, निपट कुचालि कुसाज।
मनहु मवासे मारि कलि राजत सहित समाज॥ ५५८॥

अपने दल सहित बुरी चाल वाला कलिकाल देव मन्दिर तीर्थों, पुरियों में ऐसे विराजमान है जैसे कोई राजा अपने शत्रु को परास्त कर किले में विराजमान होता है॥ ५५८॥

गोंड गँवार नृपाल महि, यमन महा-महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि केवल दंड कराल॥ ५५९॥

गोंड, गँवार तो कलि में राजा हुए और यवन सम्राट् हुआ। अतः साम, दान और भेद तो रही नहीं गया। रह गया केवल विकट दण्ड। भाव यह कि अयोग्य राजा के राज्य में राज धर्म नहीं रह जाता। केवल दण्ड ही रह जाता है॥ ५५९॥

फोरहिं सिल लोढ़ा सदन लागे अढुक पहार।
कायर कूर कुपूत कलि घर घर सहस डहार॥ ५६०॥

कलियुग में घर घर ऐसे कायर और कपूत भरे पड़े हैं कि पहाड़ का ढोकर लगने पर घर में सिल लोढा फोरते हैं अर्थात् बलवान् से पार न पाकर निर्बल को ही सताते हैं ॥ ५६० ॥

प्रकट चारि पद धरम के, कलि महँ एक प्रधान ।
येन केन बिधि दीन्हे ही दान करै कल्यान ॥ ५६१ ॥

धर्म के चार चरण (सत्य, सौच, दया और दान) हैं पर कलि में मुख्य दान एक ही चरण रह गया, (दान तीन प्रकार का है सात्विक, राजसिक और तामसिक) चाहें किसी प्रकार से भी कलियुग में दान देने से कल्याण होता है ॥ ५६१ ॥

कलिजुग सम जुग आन नहीं जो नर कर बिस्वास ।
गाइ रामगुन-गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास ॥ ५६२ ॥

यदि मनुष्य विश्वास करे तो कलियुग के समान दूसरा युग नहीं है क्योंकि इस युग में श्रीरामचन्द्र जी के गुणगाथाओं को गा कर मनुष्य संसार सागर से बिना प्रयास पार हो जाता है ॥ ५६२ ॥

स्रवन घटहु, पुनि दृग घटहु, घटहु सकल बल देह ।
इते घटे घटि है कहाँ जो न घटै हरि-नेह ॥ ५६३ ॥

सुनने की शक्ति भी कम हो जाय, दृष्टि भी मंद पड़ जाय, शरीर के सभी बल घट जायँ, पर इतना घटने ही से क्या घटा जब भगवान् का नेह नहीं घटा । यदि श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में प्रेम बना रहे तो मनुष्य की सारी शक्तियाँ घट जायँ, इससे कुछ हानि नहीं ॥ ५६३ ॥

तुलसी पावस के समय धरी कोकिलन मौन ।
अब तो दादुर बोलि हैं, हमैं पूछिहै कौन ॥ ५६४ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि वर्षाऋतु देख कर कोयल मौन हो गयी, (यह समझ कर कि) अब तो मेढ़क बोलने लगे, हमें कौन पूछेगा । भाव यह कि कलियुग में पाखंडियों की प्रबलता देख सन्त जन मौन ही धारण कर लेते हैं, क्योंकि उनकी सुनता ही कौन है । कलियुग में तो पाखंडी ही मान्य होते हैं ॥ ५६४ ॥

कुपथ कुतर्क कुचालि कलि, कपट दंभ पाषंड ।
दहन रामगुन-ग्राम जिमि ईंधन अनल प्रचंड ॥ ५६५ ॥

कलियुग में बुरे पथ, बुरे वाद विवाद, बुरी चालें, छल, दंभ इन सब को श्रीरामचन्द्र जी की गुणगाथाएँ ऐसे ही जला देती हैं जैसे आग ईंधन को जलाती है ॥ ५६५ ॥

सोरठा

कलि पाषंड प्रचार, प्रबल पाप पाँवर पतिन।
तुलसी उभय अधार, राम नाम, सुरसरि-सलिल ॥ ५६६ ॥

कलियुग में पाखण्ड के प्रचार से तथा प्रबल पाप से नीच पामर जन अधोगति को प्राप्त होते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि इन दोनों से छुटकारा पाने के लिए श्रीराम नाम और गंगा का जल है ॥ ५६६ ॥

दोहा

रामचन्द्र-मुख-चन्द्रमा चित चकोर जब होइ।
रामराज सब काज सुभ समय सुहावन सोइ ॥ ५६७ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के मुख रूपी चन्द्रमा में चित्त रूपी चकोर जब लग जाता है, तो राम राज के समान सभी शुभ कार्य होने लगते हैं और समय भी वैसा ही सुहावना हो जाता है ॥ ५६७ ॥

बीज राम-गुनगन, नयन जल, अंकुर पुलकालि।
सुकृती सुतन सुखेत बर, बिलसत तुलसी सालि ॥ ५६८ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के गुणों का समूह बीज है, नेत्रों के आँसू जल है, शरीर का पुलकित होना अंकुर है, पुण्य रूपी सुन्दर शरीर खेत है उस खेत में तुलसी रूपी अन्न लहलहा रहा है। भव यह कि दैहिक और भौतिक आनन्द तब प्राप्त होता है जब श्रीरामचन्द्र जी के गुण समूह स्रवण करने से नेत्रों से अश्रुधारा बह चले; श्रीराम नाम का बीज पुलकावली रूप में निकल आवे, और शरीर से सब शुभ कार्य हों ॥ ५६८ ॥

तुलसी सहित सनेह नित सुमिरहु सीताराम।
सगुन सुमंगल सुभ सदा आदि मध्य परिनाम ॥ ५६९ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि प्रेम सहित नित्य सीताराम का स्मरण करो। इससे सदा शुभदायक शकुन होंगे और कल्याण होगा आदि, मध्य और अन्त भी भला होगा ॥ ५६९ ॥

पुरुषारथ स्वारथ सकल, परमारथ परिनाम।
सुलभ सिद्धि सब साहिबी सुमिरत सीताराम ॥ ५७० ॥

सीताराम के स्मरण करने से सब सिद्धियाँ और प्रभुता प्राप्त होती हैं, पुरुषार्थ की प्राप्ति तथा स्वार्थ कि सिद्धि तथा परमार्थ की भी प्राप्ति होता है। भाव यह कि सीताराम के स्मरण करने से सब ऐश्वर्यादि सुखों को भोग कर अन्त में मनुष्य वैकुण्ठ धाम को जाता है ॥ ५७० ॥

मनिमय दोहा दीप जहँ, उरघर प्रगट प्रकास।
तहँ न मोह भय-तम तमी, कलि कज्जली विलास ॥ ५७१ ॥

जब मणिमय दोहा रूपी दीप का हृदय रूपी घर में प्रकाश फैल जाता है, तब वहाँ मोह रूपी अंधकार और कजली रूपी कलि का पाप नहीं बिलसता ॥ ५७१ ॥

का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिए साँच।
काम जु आवै कामरी, का लै करै कुमाँच ॥ ५७२ ॥

भाषा या संस्कृत पढ़ने से क्या हुआ श्रीरामचन्द्र जी से सत्य प्रेम चाहिए। रेशमी वस्त्र से क्या लाभ यदि कमल ही से काम निकले ॥ ५७२ ॥

मनि मानिक महँगे किये, सहँगे तृन जल नाज।
तुलसी एतो जानिये राम गरीब-नेवाज ॥ ५७३ ॥

मणि और माणिकों को महँगा तथा तृण और जल को सस्ता किये। हे गरीब नेवाज राम! तुलसी तो इतना ही जानता है। अर्थात् गरीब निवाज राम ने मणि मुक्ता आदि को महँगा किया और अन्न जल तथा तृण को सस्ता किया। मणिमाणिक की तरह महँगे सिद्धियों की प्राप्ति तो कठिन है, तुलसी तो गरीब नेवाज राम के चरणों को ही जानता है ॥ ५७३ ॥

॥ शुभमस्ति ॥

Printed by RAMZAN ALI SHAH at the National Press, Allahabad.